निबन्ध-सुधा

[संस्कृत के छात्रों के लिए उपयोगी निबन्ध]

लेखक:
डॉ० कपिलदेव त्रिपाठी
आचार्य एम. ए., पी-एच. डी.

मूल्य ५.००

प्रकाशक :
भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी □ दिल्ली

निबन्ध-सुधा

[संस्कृत के छात्रों के लिए उपयोगी निबन्ध]

लेखक

डॉ० कपिलदेव त्रिपाठी

आचार्य, एम. ए., पी-एच० डी०

प्रकाशक

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी दिल्ली

आशंसा

भाषा की शिक्षा में निवन्ध-रचना का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निबन्ध-रचना के लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं है, कि शिक्षार्थी को भाषा का व्याकरण-सम्मत सम्यक् ज्ञान हो, प्रत्युत यह भी आवश्यक है, कि उसे विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों की अधिकाधिक जानकारी हो। यों तो शिक्षार्थी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाचारपत्रों, मासिक पत्रिकाओं तथा विविध विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन करके अपने सामान्य ज्ञान की अभिवृद्धि करे, किन्तु आजकल विद्यार्थियों पर पाठ्यग्रन्थों का भार इतना अधिक हो गया है कि वे उपर्युक्त विधि से निवन्ध-रचना सम्वन्धी उपरि-निर्दिष्ट आवश्यक सामान्य ज्ञान का समुचित अर्जन नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में यह समीचीन है कि विभिन्न परीक्षाओं के स्तर के अनुरूप निबन्ध-रचना सम्वन्धी पुस्तकें निर्मित हों, जो शिक्षार्थियों को सहज रूप में सुलभ हो सकें।

इस दृष्टि से डॉ० कपिलदेव त्रिपाठी एम० ए०, आचार्य, प्राध्यापक, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा लिखित 'निबन्ध-सुधा' नामक पुस्तक छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें भारतीय समाज, पर्व-उत्सव, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, जीवन-चरित आदि विषयों से सम्वन्धित निबन्ध संकलित हैं। ये सभी ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ विशिष्टशैली-समन्वित हैं। इन्हें पढ़कर छात्रों को विषय और भाषाशैली दोनों का वोध सहज रूप में हो सकता है। संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए ये निवन्ध विशेप उपयोगी हैं, क्योंकि प्रथमतः तो लेखक स्वयं संस्कृत का पण्डित है, दूसरे हिन्दी भाषा पर भी उसका पूर्ण अधिकार हैं। आधुनिक विषयों का भी इस पुस्तक में समुचित समावेश हुआ है। इन कारणों से यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अपरिहार्य है। विद्वान् लेखक इसके लिए वधाई के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि विद्यार्थी इस ग्रन्थ से पूर्णतः लाभान्वित होंगे।

सोनिया, वाराणसी } शम्भुनाथ सिंह

निवेदन

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। हिन्दी भाषा का ज्ञान आज प्रत्येक नागरिक के लिये आवश्यक है। यही कारण है कि आजकल हिन्दी का पठन-पाठन सर्वत्र अनिवार्य रूप से हो रहा है। भाषा-ज्ञान का विशिष्ट साधन लेख है। इसी से परीक्षाओं में लेख या निबन्ध अपरिहार्य होता है। अतएव हिन्दी का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा परीक्षाओं में सफल होने के लिए छात्रों को लेख या निबन्ध पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। निबन्ध-लिखने के पूर्व विद्यार्थी को तत्सम्बन्धी पुस्तकों की नितान्त आवश्यकता होती है। प्रस्तुत पुस्तक 'निबन्ध-सुधा' उसी लक्ष्य की पूर्ति में एक लघु प्रयास है। वैसे तो, सभी माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है, पर विशेषतः संस्कृत के विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर लिखी गयी है।

इस पुस्तक में सामाजिक, सांस्कृतिक, चरितात्मक तथा सामयिक परीक्षोपयोगी निबन्ध संकलित हैं। प्रारम्भ में एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें निबन्ध लेखन सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य बातों का संकलन किया गया है, जो छात्रों के लिए विशेष उपादेय हैं। पुस्तक की भाषा सरल तथा सुबोध रखने की भरसक चेष्टा की गयी है। संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है। आशा है, इस 'सुधा' का पान कर विद्यार्थि-वर्ग परितृप्त होगा।

इस पुस्तक के लिखने में जिन लेखकों तथा कवियों की रचनाओं से मैंने सहायता प्राप्त की है, उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर रहा हूं।

साथ ही हिन्दी के यशस्वी कवि एवं लेखक डॉ० शंभुनाथ सिंह का मैं विशेष आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक की 'आशंसा' लिख कर मेरा उत्साहवर्धन किया है।

अन्त में 'भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी' के संचालक श्री किशोर चन्द्र जैन को मैं विशेष धन्यवाद देता हूं, जिनके सत्प्रयास से यह 'निवन्ध सुधा' छात्रों में (विशेषकर संस्कृत के छात्रों में) अधिक प्रिय हो सकी और आज इसका षष्ठ संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

अध्यापक निवास
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२

कपिलदेव त्रिपाठी

विषय-सूची

भूमिका

निवन्ध शब्द का आजकल जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है, वह संस्कृत साहित्य की देन नहीं है। हिन्दी साहित्य में निवन्ध का विकास अंग्रेजी साहित्य के अनुकरण पर हुआ है। वैसे, निवन्ध शब्द संस्कृत भाषा का है, जिसका अर्थ है—वन्धन। प्राचीन काल में भोज-पत्रों पर लिखे गये लेखों के संग्रह करने, सँवारने और सिल कर एक जगह बाँधने की क्रिया को निवन्ध कहा जाता था। वाद में इस शब्द का प्रयोग साहित्यिक तथा धार्मिक गद्य रचना के लिए होने लगा। पारिभाषिक शव्दावली में—'निबन्ध वह गद्य रचना है, जिसमें किसी विषय से सम्वद्ध कुछ प्रमुख तथ्यों का क्रमवद्ध संकलन किया गया हो।' प्रवन्ध, लेख, गद्यरचना आदि इसके अन्य नाम हैं।

निबन्ध का महत्त्व

निवन्ध पढ़कर हम किसी विषय या वस्तु का समुचित ज्ञान थोड़े समय में कर सकते हैं। विभिन्न लेखकों की शैलियों से परिचित होकर अपनी एक स्वयं शैली वना सकते हैं। भाषा का परिष्कार तथा भावों का विस्तार निवन्धों के पढ़ने से अनायास हो जाता है। ज्ञान तथा विज्ञान की आवश्यक वातों का परिचय भी हमें निवन्धों के ही माध्यम से होता है। वास्तव में निंवन्धों का असाधारण महत्त्व है। उसका पठन-पाठन एवं लेखन सभी आवश्यक है।

निबन्ध के प्रमुख तत्त्व

निवन्ध के दो प्रमुख तत्त्व हैं—१. सामग्री तथा २. शैली। इनमें यदि सामग्री शरीर है तो शैली आत्मा है। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। किसी विषय पर लेख लिखने के पूर्व तद्विपयक सामग्री का चयन अत्यावश्यक होता है। सामग्री-चयन का काम वही लेखक अच्छा कर सकता है, जिसने उस

विषय के सम्बन्ध में अध्ययन किया है तथा वस्तुतत्त्व का स्वयं निरीक्षण किया है। किसी कवि या महापुरुष के सम्बन्ध में निबन्ध लिखने के लिए यदि अध्ययन आवश्यक है, तो किसी दृश्य या स्थान के सम्बन्ध में लेख लिखने के लिए सम्यक् निरीक्षण। अध्ययन तथा निरीक्षण दोनों के दो क्षेत्र हैं, अतः लेखक को दोनों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

सामग्री के चयन में लेखक को अध्ययन और निरीक्षण के समय आवश्यक तथ्यों का संक्षिप्त विवरण अपनी 'नोट बुक' में अङ्कित करना नहीं भूलना चाहिये, अन्यथा लेख लिखते समय वह विस्मृत हो सकता है। प्रश्न उठता है, विद्यार्थी परीक्षा भवन में उस 'नोट बुक' से कैसे लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि परीक्षा-भवन में तो 'नोट बुक' जा नहीं सकती। बात बिल्कुल सही है। तो क्या परीक्षार्थी के लिए 'नोट बुक' में लिखित सामग्री-विवरण व्यर्थ है? कदापि नहीं,। परीक्षा के लिये भी उसकी बड़ी भारी उपयोगिता यह है कि जिस दिन परीक्षा देनी है, उस दिन केवल उस विवरण को ही बार-बार परिशीलन करने से सभी तथ्य कंठगत हो जायेंगे और उसी आधार पर अच्छा निबन्ध लिख कर उत्तम श्रेणी के अङ्क प्राप्त किये जा सकेंगे। अतः विषय-चयन में आवश्यक तथ्यों का 'नोट बुक' अङ्कित करना सबके लिए आवश्यक है।

'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' इस उक्ति के अनुसार लेखक को निरन्तर लिखने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के बिना सही गुम्फन नहीं होता। कोई भी मनुष्य अभ्यास के बिना अच्छा लेखक नहीं हो सकता। अतः बराबर अध्ययन, निरीक्षण, मनन, चिन्तन तथा लिखने के कार्य में लेखक को प्रवृत्त रहना चाहिये।

शैली लेखक की कसौटी है। कठिन से कठिन विषय को सरल से सरल रूप में व्यक्त करना शैली की ही विशेषता है। प्रत्येक लेखक की अपनी निजी शैली होती है। कहा भी है कि—"शैली ही मनुष्य है।" शैली में भाषा

का प्रमुख स्थान है। क्लिष्ट भाषा में लिखे गये निवंध के लिये 'क्लिष्ट शैली' तथा सरल भाषा में लिखे गये निवन्ध के लिए 'सरल शैली' का प्रयोग किया जाता है। अलंकारों से गुम्फित शब्दावली वाले निवन्ध 'अलंकृत शैली' में रखे जाते हैं। इसी तरह व्यङ्ग्यात्मक, विश्लेषणात्मक आदि अनेक शैलियाँ हैं। हिन्दी में संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा प्रचलित उर्दू-अंग्रेजी शब्दों से युक्त भाषा व्यवहृत होती है। इन्हें क्रमशः परिनिष्ठित शैली तथा प्रचलित शैली की संज्ञा दी जा सकती है। व्यक्तिविशेष के नाम पर भी शैली वनतीं है। जैसे वाणभट्ट की शैली और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शैली, आदि।

लेखक की भाषा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। भावों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख साधन भाषा ही है। भाषा जितना ही शुद्ध होगी, लेख उतना ही सुन्दर होगा। भाषा की शुद्धता के लिए व्याकरण के नियमों पर पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता होती है। विराम चिन्ह, विभक्ति, अनुस्वार, विसर्ग व, ब, श, स, ष, ह्रस्व, दीर्घ आदि की अशुद्धियाँ भाषा-निर्माण में अत्यन्त घातक हैं। इससे कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। लेखक को इस महत्त्वपूर्ण बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। लम्वे-लम्वे समासवहुल शब्दों का प्रयोग लेख को दुरूह तथा वोझिल वना देता है। सन्धि को भरसक तोड़ कर रखना चाहिये। हिन्दी भाषा संस्कृत से निकली है, अतः भरसक, उसके शब्दों का चयन संस्कृत के शब्द भण्डार से ही करना चाहिये। उर्दू अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का वीच-वीच में प्रयोग, भाषा को टकसाली वना देता है। अतः लेखक को इस पर भी ध्यान देना चाहिए। मुहावरों का समुचित प्रयोग भी भाषा की सजावट के लिए अत्यन्त सहायक है। निवन्ध को आकर्षक तथा वोधगम्य बनाने के लिए अनुच्छेदों का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु अनुच्छेद-निर्माण वहुत सोच समझ कर करना चाहिए। बीच-बीच में सूक्तियों का प्रयोग भी निवंध को सुन्दर वनाने में सहायक होता है। इन सब बातों पर लेखक को ध्यान देना चाहिए।

निबन्ध के अङ्ग

निवन्ध के मुख्यतः तीन अंग होते हैं—(१) प्रारम्भ या प्रस्तावना (२) मध्य तथा (३) अन्त या उपसंहार। प्रस्तावना निवन्ध का महत्वपूर्ण भाग है। प्रस्तावना रोचक तथा भावपूर्ण होनी चाहिए। इसकी रोचकत ही पाठक को पूरा लेख पढ़ने को प्रेरित करती है। प्रस्तावना लिखने के अनेका ढंग हैं। कोई विषय की उपयोगिता अथवा परिभाषा से उसे आरम्भ करता है। कोई किसी कवि की आकर्षक उक्ति से निवन्ध आरम्भ करता है। कोई विषय का प्रतिपादन करता हुआ ही लेख प्रारम्भ करता है। कोई किसी दृश्य से निवन्ध प्रारंभ करता है। कोई किसी कथा या कहावत द्वारा ही निवन्ध का श्री गणेश करता है। तात्पर्य यह है कि निवन्ध प्रारंभ करने के अनेक ढंग हैं। इनमें कोई एक ढंग अपनाना चाहिए।

निवन्ध के दूसरे भाग (मध्य) में लेखक जितना विस्तार करना चाहे कर सकता है। प्रत्येक वात को अनुच्छेदों में वाँटकर इस भाग में स्पष्ट रूप से लिखा जा सकता है। इस भाग में इस वात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि महत्त्वपूर्ण वस्तु विस्तृत हो तथा गौण वस्तु संक्षिप्त। तथ्यों को स्पष्ट तथा प्रमाणित करने के लिए इस भाग में विद्वानों की सूक्तियों और लोकोक्तियों का उल्लेख समीचीन होता है।

निवन्ध का अंतिम भाग या उपसंहार संक्षिप्त किन्तु रोचक होना चाहिए। अधिक अच्छा तो यह है कि लेख का सारांश देकर ही उसका उपसंहार किया जाय। प्रस्तावना की तरह उपसंहार का भी अधिक महत्त्व है। केवल उपसंहार पढ़कर सारे लेख का विषय स्पष्ट हो जाय, लेखक को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही वह इतना प्रभावकारी हो कि तत्काल ही पाठक उससे प्रभावित हो जाय। अतः उपसंहार की रचना में लेखक को अधिक सावधान रहना चाहिये। परीक्षार्थियों के लिये इस भाग का वड़ा महत्त्व है। उपसंहार की अच्छाई अच्छे अंक प्राप्त करने में

सहायक होती है। यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं हैं; पर स्थूल रूप से निम्नलिखित बातें उपसंहार में लिखनी चाहिये—

(१) सारांश, (२) परिणाम, (३) उपदेश, (४) अपनी सम्मति, (५) कोई सूक्ति, (६) विषय का महत्त्व अथवा (७) निवेदन।

निबन्ध के मुख्यत: चार भेद माने गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) वर्णनात्मक

(२) विवरणात्मक या चरितात्मक

(३) विचारात्मक

(४) समीक्षात्मक या आलोचनात्मक

वर्णनात्मक निबन्ध में स्थान, दृश्य, भवन, नदी, पर्वत, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, यात्रा, त्यौहार आदि प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक वस्तुओं का साहित्यिक ढंग से तथ्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थी को सर्वप्रथम वर्णनात्मक निबन्ध ही लिखने चाहिये। ऐसे निबन्धों की सफलता अध्ययन, मनन, चिन्तन, और निरीक्षण पर निर्भर करती है।

विवरणात्मक निबन्ध में ऐतिहासिक घटना, जीवन-चरित्र, आत्म-कथा आदि का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे निबन्धों में काल-क्रम के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिये। ऐसा न हो कि किसी व्यक्ति का जीवन-चरित्र लिखते समय पहले उसकी मृत्यु ही लिख दी जाय पश्चात् अन्य कार्यों का विवरण दिया जाय, ऐसा करना उपहासास्पद है। क्रम के साथ-साथ शैली में रोचकता भी आवश्यक है।

विचारात्मक निबन्ध में अमूर्त (आकार रहित) विषयों का विचारात्मक वर्णन रहता है। क्रोध, दया, करुणा, मैत्री, धैर्य, स्वच्छता, स्वदेशप्रेम, स्त्री-शिक्षा, परोपकार आदि निबन्ध इसी के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे निबन्धों में तर्क और युक्तियों द्वारा वर्ण्य विषय की उपादेयता और अनुपादेयता, उससे होने वाले हानि और लाभ आदि का विश्लेषण किया जाता है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये अध्ययन, मनन, चिन्तन, अनुभव और सूक्ष्मेक्षिका की

आवश्यकता होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निवन्ध इसी कोटि में आते हैं।

आलोचनात्मक निबन्ध का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक विषयों की युक्तिपूर्ण समीक्षा की जाती है। किसी पक्ष को सिद्ध करने के लिये अन्य पक्ष का तर्क एवं दृष्टान्तों द्वारा खण्डन-मण्डन करना समीक्षात्मक लेखों का प्रधान कार्य है। छायावाद, रहस्यवाद, समाजवाद आदि निवन्ध इसके अन्तर्गत आते हैं।

निबन्ध एक कला है। इसमें दक्षता प्राप्त करने के लिए अध्ययन, निरीक्षण और अभ्यास की नितान्त आवश्यकता है। भाषा का ज्ञान भी निवन्ध-लेखक के लिये परमावश्यक है। छात्रों को निवन्ध लिखने में आलस्य नहीं करना चाहिये। लिखकर उसे गुरुओं को दिखाना चाहिये। इससे धीरे-धीरे उसकी त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी और वह एक सफल निवन्धकार बन जायगा। प्रारम्भिक लेखक को लेख लिखने के पूर्व उसकी एक संक्षिप्त 'रूप-रेखा' बना लेनी चाहिये। इससे क्रमवद्ध रूप में सारी बातें निबन्ध में समाविष्ट हो सकेंगी। छात्रों को इन सब बातों पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। निवन्ध-लेखन कला में कुशल होना प्रत्येक विषय में सहायक है, इसे स्मरण रखना चाहिये।

卐

निबन्ध-सुधा

भारत-महिमा

हमारे देश का प्राचीन नाम भारतवर्ष है। इसका यह नाम पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर पड़ा। यह अमरवाणी की उद्गम-भूमि तथा भगवान् की अवतरण-भूमि है। सबसे पहले सभ्यता का विकास इसी देश में हुआ, विद्वानों की ऐसी मान्यता है। साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में यह देश अन्य देशों का गुरु रहा है। यहाँ के धर्म और दर्शन सभी धर्मों और दर्शनों के प्रेरणास्रोत हैं। यहाँ की कला इतिहास की अमर निधि है। यहाँ की भूमि सही अर्थ में 'वसुधा' है। यहाँ की प्रकृति साधना और कल्पना की जननी है। इन्हीं कारणों से इस देश की महिमा का गान मुक्तकण्ठ से देवता भी करते हैं—

'गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।' (वि० पु० २।३।२४)

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप का एक प्रमुख देश है। यह उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में भारत महासागर तक तथा पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में आसाम तक फैला हुआ एक विस्तृत भूखण्ड है। यहाँ विविध प्रकार की जलवायु, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा मानव जातियाँ पाई जाती हैं। किन्तु इन विविधताओं में भी एक बहुत बड़ी एकता है, जो सांस्कृतिक एकता है। इस एकता का महान् आधार संस्कृत भाषा और उसका प्राचीन वाङ्मय है।

भारतवर्ष प्रकृति देवी का रमणीय क्रीड़ास्थल है। प्रकृति का सहज रूप हिमालय पर्वत और उसकी अनन्त श्रेणियाँ हैं। अपना ऊँचा शिर उठाये यह पर्वत भारत के लिए सन्तरी का काम करता है। यह साधकों की साधना-भूमि एवं कवियों की कल्पना-भूमि है। यहीं पर कैलास शिखर है, जहाँ भगवती पार्वती

के साथ भगवान् शंकर निवास करते हैं। यहीं कन्दराओं में बैठकर भारतीय मनीषियों ने अमरवाणी का अमृत-मन्थन किया था। इसीकी गोद से गंगा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि अनेक पावन एवं महान् नदियों ने प्रादुर्भूत होकर भारतीय भूमि को 'सुजला', 'सुफला' एवं 'सस्यश्यामला' की उपाधियों से विभूषित किया है। इसीके अञ्चल में वह काश्मीर प्रान्त है, जो काव्य और केशर का देश कहलाता है। श्रीनगर इसकी राजधानी है। यहाँ की प्राकृतिक छटा देखने योग्य है।

बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम पयोधि तक फैली हुई विन्ध्य पर्वतश्रेणियाँ हैं, जो देश के कटि-प्रदेश में मेखला की तरह स्थित होकर उत्तर और दक्षिण की विभाजक रेखा सी बनी हुई हैं। विन्ध्याचल के दक्षिण पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों के बीच दक्षिण का पठार है, जो काफी समतल और उपजाऊ है। दक्षिण पठार के पश्चिम और पूर्व में पहाड़ों की दो शृङ्खलायें उत्तर से दक्षिण की ओर चली गयी हैं, जिन्हें पूर्वी और पश्चिमी घाट कहते हैं। दक्षिण की प्रायः सभी नदियाँ दक्षिण के पश्चिमघाट से निकलती हैं और पठार को सींचती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। पश्चिमी घाट और पश्चिमी सागर के बीच एक तंग समुद्र का किनारा है, जो उत्तर में कोंकण से लेकर दक्षिण में केरल तक चला गया है। यहाँ पानी अधिक बरसता है; इसलिए यहाँ की भूमि हरी-भरी है।

भारत का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्व भी कम नहीं है। यहाँ की आर्य-संस्कृति इतनी महान् तथा उदार है कि यवन, शक, हूण, द्रविड़ आदि कितनी अनार्य जातियों की संस्कृतियाँ उसमें अनायास विलीन हो गयीं। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में वर्ण और जाति का आधार प्रायः सब स्थानों में पाया जाता है। सभी जगह सामाजिक रीति-रिवाज प्रायः एक तरह के हैं। धर्म और दर्शन में भी पूर्ण साम्य है। भाषा और साहित्य हमारी सांस्कृतिक एकता के बहुत बड़े साधन रहे हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाएँ सम्पूर्ण देश में समान रूप से आदृत हैं। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति, काव्य, नाटक आदि साहित्य सारे देश की समान रूप से सम्पत्ति हैं। कला के आदर्श भी प्रायः समान ही हैं।

यहाँ एक से एक पावन तीर्थ हैं, जो सभी भारतवासियों के लिए समान-रूप से पापनाशक एवं पुण्यप्रदायक माने जाते हैं। अयोध्या, मथुरा, द्वारिका, काशी, प्रयाग, काञ्ची, अवन्ती, पुरी, वदरीनाथ, हरिद्वार, रामेश्वरम् और विन्ध्यक्षेत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ अनेक पवित्र नदियाँ हैं, जिनमें स्नान करने से विविध पापों एवं त्रिविध तापों का नाश होता है। गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी आदि उनके नाम हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस देश का विपुल महत्व है। रामायण के राम तथा महाभारत के कृष्ण ऐतिहासिक महापुरुष हैं। महात्मा बुद्ध के बौद्धधर्म ने भारतीय इतिहास को विशेष प्रभावित किया है। अशोक, कनिष्क आदि राजा बौद्ध थे, जिन्होंने अपनी शासन-नीति में बौद्धधर्म को पूर्ण प्रश्रय दिया। इसी बौद्ध धर्म ने लंका, वर्मा, चीन, जापान, कम्वोडिया, थाइलैण्ड आदि बाहरी देशों से हमारा मैत्री-सम्वन्ध स्थापित कराया। इतिहास में जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी का विशिष्ट स्थान है। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' है। गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा समुद्रगुप्त थे। इन्हीं के काल में महाकवि कालिदास हुए, जिनकी कविता और कल्पना वेजोड़ है। इस काल में संस्कृत साहित्य की महती अभिवृद्धि हुई। काव्य, नाटक, दर्शन, आयुर्वेद आदि सभी क्षेत्रों में साहित्य-निर्माण किया गया। हर्षवर्धन सप्तम शतक का महाप्रतापी राजा था। इसी समय महाकवि बाण ने 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' की रचना की। मुस्लिम शासकों में अकवर और शाहजहाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। अकवर ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दूधर्म को पूर्ण प्रश्रय दिया। शाहजहाँ ने कला और साहित्य को पूर्ण प्रोत्साहन दिया। आगरे का ताजमहल और मोतीमहल उसी की अमर कीर्ति हैं। अंग्रेजी शासन भी भारत के लिए अनेक अंशों में वरदान रहा है। उन्हीं के सहयोग से हम अंग्रेजी सीख कर राजनीति, विज्ञान, व्यापार आदि के क्षेत्र में आगे बढ़ सके हैं। संस्कृत विद्या के क्षेत्र में अंग्रेजों की देन अविस्मरणीय है।

भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास अन्य देशों की स्वतन्त्रता के इतिहास से

विलक्षण है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में जिस अहिंसात्मक आंदोलन द्वारा भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की है, वह अनुपम है। स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिकों में पण्डित मोतीलाल नेहरू, लोकमान्य तिलक, महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त आदि नेताओं के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पञ्चवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत ने जो सर्वांगीण उन्नति की है, वह सबके सामने है।

इस तरह यह देश अपनी प्राकृतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्पराओं एवं विशेषताओं के साथ विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हमारी मातृभूमि है। इसकी स्वतन्त्रता की रक्षा में हमें सर्वविध उत्सर्ग के लिए सर्वदा सन्नद्ध रहना चाहिए। कहा भी है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

卐

अमरवाणी का वैभव

अमरवाणी का ही दूसरा नाम संस्कृत भाषा है। आजकल व्यवहार में 'संस्कृत' शब्दों का ही प्रयोग बहुधा किया जाता है। यह अमरों (देवताओं) की वाणी है। अतः यह देववत् पूज्य एवं वन्द्य है। साथ ही यह कभी न मर सकने वाली हमारी अमर भाषा है। इसकी साधना एवं आराधना मनुष्यों को भी अमर बना देती है। यह हमारी संस्कृति की आधार-शिला है और साथ ही यह विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसी की कोख से हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, सिन्धी, नेपाली आदि भारतीय-अभारतीय अनेक भाषाओं का जन्म हुआ है। अर्थात् यह आर्यभाषाओं की जननी है। संस्कृत भाषा का ही प्रभाव है कि आज सम्पूर्ण भारत राष्ट्र एकता के सूत्र में आबद्ध है। सच्चे अर्थों में भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत ही है।

संस्कृत भाषा का वाङ्मय एक विस्तृत सागर है, जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला आदि के अनन्त रत्न बिखरे पड़े हैं। इसमें जो जितना ही गोता लगायेगा, वह

उतने ही रत्न पा सकेगा। इसके मन्थन से अमृत की प्राप्ति ध्रुव है। ऐसे अमर वाङ्मय की तुलना क्या विश्व का कोई भी वाङ्मय कर सकता है? कदापि नहीं। इसके सामने सबको नतमस्तक होना ही पड़ेगा। अतः हमें इस अमर निधि पर गर्व होना स्वाभाविक है।

वेद अमरवाणी का उत्तम अंग है। मुख्यतः वेद चार हैं— (१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद, (४) अथर्ववेद। यजुर्वेद की प्रसिद्ध दो शाखायें हैं—शुक्लयजुर्वेद तथा कृष्णयजुर्वेद। पहले वेद एक ही था। यज्ञ की सुविधा के लिए भगवान् व्यास ने उसे चार भागों में विभक्त किया। इसी से उनका नाम वेदव्यास (वेदों का विस्तार करनेवाला) पड़ा। व्यास ने चारों वेदों को क्रमशः अपने प्रमुख शिष्य पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु को पढ़ाया। उन चारों शिष्यों ने अपने-अपने शिष्यों को पढ़ाया। इस तरह परम्परा से वेद की अनेक शाखायें हो गयीं। फलतः ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०० तथा अथर्ववेद की ९ शाखायें हुईं। सम्प्रति ये सभी शाखायें उपलब्ध नहीं हैं।

वेदों के ४ भाग हैं—(१) संहिताभाग, (२) ब्राह्मणभाग, (३) आरण्यक भाग तथा (४) उपनिषद् भाग। इनमें संहिता भाग मुख्य है। इसमें मन्त्र हैं। ब्राह्मण भाग और आरण्यक भाग में मन्त्रों की व्याख्या है। इनका विशेष सम्बन्ध यज्ञ-यागादिकों से है। उपनिषदों का क्षेत्र ज्ञान है। आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत् आदि का गम्भीर विवेचन उपनिषदों का प्रधान प्रतिपाद्य है। उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग है। इसी से यह 'वेदान्त' भी कहा जाता है। भारतीय दर्शनों का आरम्भ यहीं से माना जाता है। प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता) में उपनिषद् अग्रणी हैं। उपनिषदों की संख्या तो १०८ है, पर उनमें मुख्य १४ हैं। उनके नाम हैं—ऐतरेय, कौशीतकी, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, केन, मुण्डक, प्रश्न, कठ, श्वेताश्वतर, ईश, नारायण, माण्डूक्य तथा मैत्रायणी।

वेदों के बाद वेदांगों का वाङ्मय आता है। वेदांग ६ हैं—(१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द तथा (६) ज्योतिष। इनमें व्याकरण वेद का मुख, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त श्रोत्र, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका तथा छन्द पाद हैं।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

(पा० शि० ४१-४२)

शिक्षा उसे कहते हैं, जिसकी सहायता से वेदों के मन्त्रों की उच्चारणविधि का भली-भाँति ज्ञान हो जाय। पाणिनि की शिक्षा प्रसिद्ध है। छन्द उसे कहते हैं, जिसकी सहायता से मन्त्रों का सस्वर गान किया जाय। निरुक्त वह विद्या है जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति जानी जाय। यास्क का निरुक्त प्रसिद्ध है। व्याकरण वह विद्या है, जो प्रकृति-प्रत्यय द्वारा अर्थ का बोध कराये। पाणिनि की अष्टाध्यायी व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ज्योतिष वह विद्या है जो काल का सही-सही ज्ञान कराये। कल्प यज्ञ-यागादि के विधान में अधिक सहायता देने वाले सूत्रग्रन्थ हैं। इनके मुख्यतः दो भेद हैं—(१) श्रौत सूत्र तथा स्मार्त सूत्र। स्मार्त सूत्रों के पुनः दो भेद हैं—गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र। श्रौत सूत्रों में यज्ञों की विविध बातों का वर्णन है, गृह्यसूत्रों में नित्य अनुष्ठेय गृहस्थ के आचारों तथा षोड़श संस्कारों का विस्तृत वर्णन है और धर्मसूत्रों में वर्ण तथा आश्रम सम्बन्धी सामाजिक संस्थाओं का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि स्मृतियों के आधार धर्मसूत्र ही हैं। स्मृतियों तथा सूत्र-ग्रन्थों को ही धर्मशास्त्र कहा जाता है। समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए इनमें पर्याप्त सामग्री है।

वेद-वेदांग के अनन्तर इतिहास तथा पुराण का वाङ्मय आता है। इतिहास से हमारा तात्पर्य रामायण तथा महाभारत है तथा पुराण से व्यास निर्मित १८ पुराण तथा उपपुराण हैं। 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' अर्थात् इतिहास और पुराण वेद के उपबृंहक हैं। विना इनके ज्ञान के वेद का सही-सही ज्ञान नहीं हो सकता। रामायण इतिहास के साथ ही काव्य ग्रन्थ भी है। यह आदि-कवि वाल्मीकि की अमर रचना है। २४ सहस्र श्लोकों का यह एक महाकाव्य है। इसमें आदर्श मानव अवतार भगवान् राम की गाथा वर्णित है। महाभारत

एक लाख श्लोकों का विशाल काव्य ग्रन्थ है। इसने १८ पर्व हैं। कौरव और पांडवों की प्रसिद्ध युद्ध-गाथा के साथ-साथ इसमें तत्कालीन राजनीति, समाज-व्यवस्था तथा धर्म का सांगोपांग वर्णन है। साथ ही प्रसिद्ध ऐतिहासिक महा-पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके शौर्य, कौशल, नीति, उपदेश आदि के अनेक मार्मिक स्थलोंने इस ग्रन्थ को अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। इसमें सभी वस्तुयें विखरी पड़ी हैं। तभी तो किसी ने कहा है—'यन्न भारते तन्न भारते' अर्थात् जो महाभारत में नहीं है वह भारत में नहीं है। वस्तुतः महाभारत हमारा आकर ग्रन्थ है। यही कारण है कि इसे पञ्चम वेद कहा गया है।

पुराण साहित्य बड़ा विशाल है। पुराणों की संख्या १८ है। यथा—

म-द्वयं भ-द्वयञ्चैव ब्र-त्रयं व-चतुष्टयम्।
अ-ना-प-लिं-ग-कू-स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।

देवीभागवत (१-३-२)

अर्थात् मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वामन, वायु, वाराह, अग्नि, नारदीय, पद्म, लिंग, गरुड़, कूर्म तथा स्कन्द। इनमें भागवत दो हैं। देवीभागवत तथा श्रीमद्भागवत। कहीं-कहीं वायुपुराण की जगह शिव–पुराण का उल्लेख है। वस्तुतः दोनों अपनी-अपनी जगह पर सही हैं। इस तरह २० पुराण प्राप्त हैं। वस्तुतः इनकी संख्या १८ ही है। उपपुराण भी १८ हैं। इनके नाम हैं—सनत्कुमार, नृसिंह, नारद, शिव, दुर्वासा, कपिल, मनु, उशना, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, भागवत और वशिष्ठ। पुराणों में कुल चार लाख श्लोक है। इनके मुख्य प्रतिपाद्य विषय पाँच हैं—सर्ग (सृष्टि), पतिसर्ग (प्रलय तथा सृष्टि), एवं (ऋषियों तथा मुनियों की वंशावली) मन्वन्तर (१४ मनुओं का काल तथा वंशानुचरित (प्राचीम राजवंशों का चरित)। इन विषयों के अतिरिक्त दान, व्रत, उत्सव, राजनीति वर्ण, आश्रम, दर्शन, विष्णु के अवतार, शिव के अवतार, देवी के अवतार आदि विविध बातों के निदर्शन पुराणों में भरे पड़े हैं। इस तरह पुराण हमारी संस्कृति के निर्माण में अधिक सहायक हैं। वेद यदि भार-तीय संस्कृति का शिरोभाग है, तो इतिहास-पुराण उसका हृदय भाग हैं। पुराणों

की भाषा इतनी सरल और प्रवाहमयी है कि पाठक सहज में उसको हृदयंगम कर लेता है। यह इस बात का प्रमाण है कि पुराण लोक-कल्याण के लिये लिखे गये हैं। उनकी शैली कथात्मक है। कथाओं द्वारा विषय के स्पष्टीकरण में बड़ी सहायता मिलती है। पुराणों का पठन-पाठन पहले बहुत होता था। आज-कल मन्द पड़ गया है। उसमें प्रगति होनी चाहिये।

वेद, पुराण और धर्मशास्त्र के बाद दर्शनशास्त्र का विशाल वाङ्मय आता है। दर्शनों की दो धारायें हैं—(१) आस्तिक तथा (२) नास्तिक। आस्तिक का अर्थ है वेदमूलक और नास्तिक का अर्थ उसके विपरीत है। आस्तिक दर्शन ६ हैं। यथा—(१) वेदान्त, (२) मीमांसा, (३) सांख्य, (४) योग, (५) न्याय तथा (६) वैशेषिक। नास्तिक दर्शन ३ हैं। यथा—(१) चार्वाक, (२) जैन तथा (३) बौद्ध। वेदान्त के कई सम्प्रदाय हैं। जैसे—शङ्कर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, निम्बार्क आदि। बौद्ध दर्शन में भी ४ सम्प्रदाय हैं, जैसे—(१) वैभाषिक, (२) सौत्रान्तिक, (३) योगाचार तथा (४) माध्यमिक। इन दर्शनों का विपुल साहित्य है। इनमें जीव-जगत्, आत्मा-परमात्मा और मोक्ष आदि का ऊहापोह किया गया है। ये दर्शन हमारी उन्नत विचारसरणि के परिचायक हैं। इन पर हमें गर्व है।

वेद, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र और दर्शन के बाद हमारा साहित्य वाङ्-मय आता है। साहित्य से हमारा तात्पर्य है—काव्य, कथा, आख्यायिका आदि। सही बात तो यह है कि काव्य के अन्तर्गत ही नाटक, कथा आख्यायिका आदि सभी आ जाते हैं। इसी से हमारे यहाँ साहित्य शास्त्र में काव्य के तीन भेद किये गये हैं—(१) गद्य, (२) पद्य तथा (३) चम्पू। चम्पू में गद्य तथा पद्य दोनों होते हैं। 'नलचम्पू' प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसके रचयिता त्रिविक्रम हैं। गद्य काव्य के मुख्यतः तीन भेद हैं—(१) नाटक, (२) कथा तथा (३) आख्यायिका। नाटक को 'दृश्य काव्य' कहते हैं। नाटक काव्य का सर्वोत्तम अंग माना जाता है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। आचार्य भरत का 'नाट्यशास्त्र' नाटकसाहित्य का शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें नाटक को पञ्चम वेद कहा गया है। संस्कृत नाटकों में कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल विश्वसाहित्य में सर्वोपरि माना जाता

है। अन्य नाटकों में भास कृत वासवदत्त, विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस, शूद्रक-कृत मृच्छकटिक, भट्टनारायण कृत वेणीसंहार तथा भवभूति कृत उत्तररामचरित उल्लेखनीय हैं। कथा एवं आख्यायिका के क्षेत्र में वाण की कादम्बरी, दण्डी का दशकुमारचरित, तथा सुबन्धु की वासवदत्ता प्रसिद्ध है।

संस्कृत का काव्य-साहित्य बड़ा समृद्ध है। इसके मुख्यतः दो विभाग हैं—(१) प्रवन्ध काव्य तथा (२) मुक्तक काव्य। प्रवन्ध काव्यों में वाल्मीकिकृत रामायण आदिकाव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव, माघ का शिशुपालवध, भारवि का किरातार्जुनीयम्, श्रीहर्ष का नैषधीय चरित विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रवन्ध काव्यों की यह विशेषता होती है कि उनमें कथाप्रवाह के साथ-साथ नदी, पर्वत, वन, सन्ध्या, प्रभात आदि प्राकृतिक दृश्यों का भी वर्णन किया जाता है। मुक्तक काव्य स्वतन्त्र होता है। इसके अन्तर्गत संस्कृत के स्तोत्र तथा फुटकर काव्य-ग्रन्थ आते हैं। स्तोत्रों में पण्डितराज जगन्नाथ की गंगालहरी, लक्ष्मीलहरी और अमृतलहरी तथा फुटकर काव्यों में उन्हीं का 'भामिनीविलास' तथा अमरुक का शतक एवं जयदेव का गीतगोविन्द प्रसिद्ध है। इन काव्य ग्रन्थों द्वारा मानव जीवन सरस तथा सहृदय बन सकता है। अतः इसका अध्ययन-अध्यापन मानव मात्र के लिए श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त हमारे संस्कृत वाङ्मय में साहित्य का शास्त्रीय विवेचन भी कम नहीं हुआ है। शास्त्रीय ग्रन्थों में मम्मट का काव्यप्रकाश, पण्डितराज जगन्नाथ का रसगंगाधर, आनन्दवर्द्धन का ध्वन्यालोक तथा विश्वनाथ का साहित्यदर्पण प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में काव्य के विशिष्ट तत्व—रस, अलंकार, गुण, रीति, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना आदि का सम्यक् निरूपण किया गया है। संस्कृत-साहित्य में लक्षण-ग्रन्थों का वाहुल्य है। यही कारण है कि लक्ष्य ग्रन्थ मर्यादित हैं। इन शास्त्र-ग्रन्थों के शासन में लिखे गए हमारे काव्य-ग्रन्थ देववाणी के शृङ्गारस्वरूप हैं।

इनके अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्पशास्त्र, तन्त्र-शास्त्र, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि अनेक विषयों में विपुल ग्रन्थों

का निर्माण हुआ है। कोई विषय छूटा नहीं है। वेदों में विज्ञान का भी उल्लेख है। इसी आधार पर आज वैदिक विज्ञान की चर्चा चारों ओर फैली हुई है।

वस्तुत: अमरवाणी का वाङ्मय विशाल एवं अमर है। इसका अनुशीलन, पठन, पाठन तथा प्रसार-प्रचार होना चाहिये। इसी से मानव मात्र का कल्याण होगा।

卐

गङ्गा-गरिमा

गंगा हमारे देश की सर्वाधिक पवित्र नदी है। यह सत्य है कि गंगा से भी अधिक जलवाली नदियाँ इस पृथ्वी पर हैं, पर भारत में गंगा की जो महिमा है वह दूसरे देशों में वहाँ की विशाल नदियों की नहीं है। इसका कारण यह है कि दूसरे देशों में नदियाँ केवल मनुष्य की ऐहिक इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली, भौतिक सुख-साधनों की जननी तथा प्राकृतिक सौंदर्य के कारण मानसिक आनन्द को देने वाली हैं, किन्तु गंगा तो हिन्दुओं की माता के समान है। ऐहिक सुखसाधनों के साथ-साथ यह पारलौकिक नि:श्रेयस की भी प्रदात्री है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान में उसका अपरिमित योग है। इस पृथ्वी पर बहती हुई भी वह स्वर्ग के देवताओं की पावन नदी है और इस लोक में रह कर भी वह परलोक की चिन्ता को दूर करने में सक्षम है। इसप्रकार गंगा हमारे लिए भुक्ति एवं मुक्ति को देनेवाली परम पवित्र नदी है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

नमामि गंगे तव पादकपङ्कजं
सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदा नराणाम्॥

गंगा की परम पवित्रता तथा उसके अलौकिक गुणों ने भारतीय वाङ्मय को आदिम काल से ही प्रभावित किया है। वेद, रामायण, महाभारत एवं पुराणों में उसकी महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है। परवर्ती कवियों ने भी गंगा

के सम्बन्ध में अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं। पण्डितराज जगन्नाथ की गंगालहरी उनमें सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी कवियों में जगन्नाथदास रत्नाकर, पद्माकर एवं भारतेन्दु की गंगा सम्बन्धी रचनायें अधिक प्रसिद्ध हैं। मुसलमान कवि रसखान ने भी गंगा की यशोगाथा गाई है। एक सवैया देखिये—

वैद की औषधि खाऊँ कछू न करौं व्रत संजम री सुनु मोसे।
तेरो इ पानी पियौं रसखानि सजीवन लाभ लहौं सुख तोसे ॥
ऐरी ! सुधामयि भागीरथी ! कोऊ पथ्य कुपथ्य करै तउ पोसे।
आक धतूरे चवात फिरैं विष खात फिरैं सिव तोरे भरोसे ॥

भगवान् शंकर की मृत्युञ्जयता में भागीरथी के भरोसे को देखने वाले अकेले सहृदय मुसलमान कवि रसखान ही नहीं हैं, अपितु रहीम, ताज, मीर आदि की गंगा सम्बन्धी सूक्तियाँ भी हृदय को परम आनन्द देनेवाली हैं।

गंगा के अनेक नाम हैं; जैसे—भागीरथी, जाह्नवी, त्रिपथगा, हैमवती, सुरसरित्, शैलसुतासपत्नी आदि। सभी नामों की उत्पत्ति के कारण हैं। 'भागीरथी' नाम की उत्पत्ति का कारण यह है कि राजा भगीरथ ने अपने पूर्वजों को तारने के लिए वड़ी तपस्या के वाद स्वर्ग से भूतल पर गंगा की प्रतिष्ठा की। इसकी विस्तृत कथा वाल्मीकि-रामायण के वालकाण्ड में लिखी है। जह्नु मुनि के आश्रम पर निवास करने के कारण इसका 'जाह्नवी' नाम पड़ा। गंगा जव स्वर्ग से आई, तो भूतल पर उसकी तीन धाराएँ फूटीं इसीसे इसका नाम त्रिपथगा पड़ा। हिमालय पर्वत से निकलने के कारण हैमवती कहलायीं। शंकर की जटा में निवास करने के कारण शैलसुतासपत्नी कहलाती हैं।

यह भागीरथी हिमालय के 'गंगोत्री' नामक स्थान से निकल कर हरिद्वार, प्रयाग, कानपुर, वाराणसी, पटना, कलकत्ता होती हुई बंगाल की खाड़ी के 'गंगा-सागर-संगम' नामक स्थान पर समुद्र में मिल जाती है। इनमें हरिद्वार, प्रयाग एवं वाराणसी का विशेष महत्व है। हरिद्वार का गंगाजल अधिक स्वच्छ एवं स्वादिष्ट है। वहाँ प्रातः-सायं स्नानार्थियों की भीड़ लगी रहती है। 'जय गंगे' की ध्वनि से आकाश गूँज उठता है और दिशाएं मुखरित हो उठती हैं। वहाँ की प्राकृतिक छटा भी दर्शनीय है। प्रयाग में आकर वह परमपावनी गंगा यमुना

तथा सरस्वती से मिल कर 'त्रिवेणी' का रूप धारण कर लेती है। त्रिवेणी में स्नान करने की बड़ी महिमा है। माघ मास में यहाँ स्नानार्थियों की बड़ी भीड़ होती है। त्रिवेणी-संगम के ही कारण प्रयाग को 'तीर्थराज' कहते हैं। वाराणसी का दृश्य इन सबसे अधिक मनोहारी है। गंगा जी मानो शङ्कर के त्रिशूल पर बसी हुई उस पावन पुरी के चरण चूमती हैं। गंगा के किनारे निर्मित घाटों की सीढ़ियाँ मानो स्वर्ग की सीढ़ियाँ हैं। वैसे तो सैंकड़ों घाट है, पर असी, हरिश्चन्द्र, दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, सिन्धियाघाट तथा पञ्चगंगा विशेष महत्व के हैं। इन घाटों पर प्रतिदिन स्नानार्थियों की भीड़ लगी रहती है। काशी में शिव और गंगा का योग सोने में सुगन्ध का काम करता है।

गंगा के तट-प्रदेश पर स्थित अनेक स्थानों पर विशेष-विशेष पर्वों के समय बड़े-बड़े मेले भी लगते हैं। कुम्भ एवं अर्धकुम्भ के अवसर पर प्रयाग तथा हरिद्वार में बड़े विशाल मेले लगते हैं। लाखों यात्री इन मेलों में सम्मिलित होकर ऐहिक तथा पारलौकिक आनन्द लूटते हैं।

अन्य जलों से गंगा-जल की विशेषता यह है कि चिर काल तक अतिरिक्त पात्र में रखे रहने पर भी वह विकृत नहीं होता। यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने भी उसके जल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। गंगाजल में कीटाणुनाशक शक्ति है। इसके पान तथा स्नान से बहुत सी बीमारियाँ दूर होती है। चर्मरोग की तो यह अपूर्ण औषध है। 'औषधं जाह्नवीतोयम्'।

गंगा नदी व्यापारियों एवं किसानों के लिए भी विशेष हितकर है। व्यापारी लोग नौका द्वारा गंगा नदी के माध्यम से व्यापार में अधिक लाभ करते हैं। प्राचीन काल में इस व्यापार का विशेष महत्व था। गंगातटवर्ती प्रदेशों में रहने वाले किसान अधिक सुखी हैं। गंगाजल से सींची हुई भूमि अधिक उपचाऊ होती है। साथ ही साथ उनको जल की कमी कभी नहीं होती। इसके अतिरिक्त गंगा से निकली हुई नहरें भी देश को हरा-भरा बनाने में समर्थ हैं। हरिद्वार से कानपुर तक एक नहर निकली है, जो अनुर्वरा भूमि को भी उर्वरा बनाने में समर्थ हुई है। आजकल गंगाजल से बिजली भी पैदा की जा रही है, जिस बिजली की उपयोगिता सर्वविदित है।

गङ्गा नदी भारतवासियों के लिए स्वर्ग के वरदान के समान है। उसके उपकारों से हम कभी उऋण नहीं हो सकते हैं। सूर्य, चन्द्र तथा हिमालय की भाँति गंगा के बिना हमारे देश भारत के कल्याण की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः हम सबको यही प्रार्थना करनी चाहिए कि हे गंगे !

त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतः
त्वद्वीचिषु प्रेङ्खतः,
त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः
स्यान्मे शरीरव्ययः।

卐

वाराणसी

भगवती भागीरथी के सुरम्य तटपर अवस्थित वाराणसी नगरी एक विशिष्ट एवं पावन तीर्थस्थल है। वरुणा और असी के मध्य भाग में स्थित होने के कारण इसका वाराणसी नाम पड़ा। इसको काशी भी कहते हैं। वस्तुतः प्राचीन काल में काशी एक जनपद था, जिसकी राजधानी वाराणसी थी। वाराणसी का ही विकृत रूप 'वनारस' है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में इस नगरी का सर्वाधिक योग रहा है और आज भी है। विभिन्न भाषा-भाषी विभिन्न प्रदेशों के लोग यहाँ निवास करते हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि यह नगरी विभिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों की संगमस्थली है।

इस पवित्र नगरी की एक विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा है। महाभारत के समय में काशिराज की राजधानी यही थी। श्रीकृष्ण के गुरु सांदीपनि का घर यहीं था। महाराज हरिश्चन्द्र ने यहीं पर सत्य की परीक्षा में विजय पायी थी। महात्मा बुद्ध ने यहीं पर सारनाथ में अपना धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। पुराणों में काशी तथा वाराणसी की महिमा के वर्णन भरे पड़े हैं। इसके अतिरिक्त अद्वैतमत के प्रतिष्ठापक भगवान् शंकराचार्य, शुद्धाद्वैत के प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य तथा विशिष्टाद्वैत मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य ने यहाँ रह कर

अपने-अपने मतों का प्रचार एवं प्रसार किया था। सन्त कवि कबीर की जन्मभूमि तथा भक्त कवि तुलसीदास की साधनाभूमि यही नगरी है।

काशी में मरने से मोक्ष मिलता है, शास्त्रों की ऐसी मान्यता है। 'काश्यां मरणान्मुक्तिः'। यही कारण है कि कितने लोग अंतिम समय में यहाँ निवास करते हैं। महात्मा तुलसीदास ने भी लिखा है—

भुक्ति मुक्ति महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहं वस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥

इस असार संसार में चार ही वस्तुएं सार हैं, जिनमें काशी वास प्रथम है।

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः, सतां संगः, गंगाम्भः शिवपूजनम् ॥

वाराणसी की अपूर्व महिमा है। यहाँ पर भगवान विश्वनाथ भगवती अन्नपूर्णा के साथ साथ स्वयं विराजमान हैं, कहते हैं कि यह पुरी शंकर के त्रिशूल पर वसी हुई है तथा तीनों लोकों से न्यारी है। माता अन्नपूर्णा के प्रसाद से यहाँ कोई भूखा नहीं रहता, यह विशेष बात है। विश्वनाथ जी तथा अन्नपूर्णा जी के मन्दिर में प्रति दिन दर्शनार्थियों की वड़ी भीड़ होती है। इनमें वावा विश्वनाथ का मन्दिर सोने का है। इन दो प्रसिद्ध मन्दिरों के अतिरिक्त यहाँ और भी अनेक सिद्धपीठ हैं। यथा—केदारजी, मृत्युञ्जय महादेव, कालभैरव, वटुकभैरव, साक्षीविनायक, दुर्गा ज़ी, संकटा जी, संकटमोचन, आदि स्थान। शास्त्रों में ऐसा ऊल्लेख है कि अपने एक-एक अंश से सभी देवता यहाँ निवास करते हैं। यही कारण है कि यहाँ पर रहनेवालों के लिए किसी तीर्थ विशेष में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

भगवती भागीरथी यहाँ पर उत्तरवाहिनी हैं। गंगातटवर्ती घाटों की छटा निराली है। असी घाट से लेकर राजधाट तक पचासों धाट हैं। इनमें तुलसी घाट, हरिश्चन्द्र घाट, दशाश्वमेघ घाट, मणिकर्णिका घाट, पञ्चगङ्गा घाट और गायघाट विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनकी ऐतिहासिक एवं धार्मिक महिमा है। इन

घाटों पर सीढ़ियाँ ऐसी बनी हुई हैं मानो ये स्वर्ग की सीढ़ियाँ हों। पंडे लोग मढ़ियों पर छतरी लगाकर जमे रहते हैं। स्नानार्थी नर-नारी-समुदाय बड़ी श्रद्धा-भक्ति से गंगा स्नान कर अपने को धन्य समझता है। ग्रहण, संक्रान्ति आदि पर्वों पर अधिक भीड़ होती है। उन्हीं घाटों पर बैठकर कहीं कोई वेदध्वनि करता है, कहीं कोई ध्यानमग्न है, कहीं कोई कथा और कीर्तन आदि कर रहा है। हिन्दी के मान्य कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक कविता में काशी की गंगा के घाटों का सजीव चित्रण किया है—

कहूँ बँधे नवघाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत।
धवल धाम चहुँ ओर फरहत धुजा पताका।
घहरत घंटा-धुनि जमकत धौंसा करि साका।
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत।

धार्मिक महत्व के साथ-साथ वाराणसी का शैक्षणिक वातावरण भी निराला है। भारत में यही एक ऐसा नगर है, जहाँ तीन-तीन विश्वविद्यालय हैं और तीनों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं। महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा संस्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय अद्वितीय विश्वविद्यालय है। यहाँ बीस हजार से ऊपर विद्यार्थी पढ़ते हैं। यहाँ के मन्दिराकार भव्य भवन कला के पावन प्रतीक हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, जो पहले संस्कृत महाविद्यालय के रूप में था, विश्व में अपने ढंग का अकेला विश्वविद्यालय है। भारतीय संस्कृति की आधारशिला संस्कृत भाषा के उत्थान में इस संस्था का अपूर्व योग रहा है, और आज भी है। यहाँ पर वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन व्याकरण ज्योतिष साहित्य आदि शास्त्रीय विषयों के साथ-साथ अंग्रेजी, हिन्दी, फ्रेंच, जर्मन, चाइनी 'तिब्बती' नेपाली आदि भाषाओं तथा राजनीति इतिहास, भूगोल अर्थशास्त्र विज्ञान भाषाविज्ञान आदि आधुनिक विषयों तथा पालि और प्राकृत का पठन-पाठन एवं अनुसंधान होता है। इसी विश्वविद्यालय के अन्तर्गत

सरस्वती भवन नामक एक विशाल पुस्तकालय है जहाँ संस्कृत के हस्तलिखि
एवं मुद्रित अलभ्य ग्रन्थों का महनीय संग्रह है। तीसरा विश्वविद्यालय है का
विद्यापीठ। यह समाजशास्त्र का अध्ययनकेन्द्र है। भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम
इस संस्था के छात्रों का अधिक योगदान रहा है। इनके अतिरिक्त सांगवेद-विद्य
लय, धर्मसंघ शिक्षामण्डल, भारत धर्म महामण्डल, सर्वोदय आदि अनेक शैक्षणि
संस्थायें हैं जिनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा हि
भाषा के उत्थान में पचासों वर्षों से लगी हुई है। इसके आर्यभाषा पुस्तकालय
हिन्दी ग्रन्थों का विशाल संग्रह है। काशिराज श्रीविभूतिनारायण सिंह के सत्प्रय
से एक अखिल भारतीय काशिराज-न्यास की स्थापना हुई है जिसके तत्त्वावध
में पुराणों का विशिष्ट प्रकाशन कार्य हो रहा है।

इस नगरी में संस्कृत के एक से एक उद्भट विद्वान् हो चुके हैं। जैसे—बा
शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, दामोदर शास्त्री, तात्या शास्त्री, सुधाकर शास्त्री
नकछेदराम जी, तिवारी जी, हरिहर कृपालु जी आदि। हिन्दी के क्षेत्र में
इस नगरी ने बड़ा कार्य किया है। आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु हरि
श्चन्द्र, छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुन्शी प्रे
चन्द आदि हिन्दीके विद्वान् इसी भूमि की देन हैं।

इस प्रकार वाराणसी नगरी एक परम पावन तीर्थ, विद्या का प्रसिद्ध के
साधकों की साधनाभूमि तथा मरने पर अनायास मुक्ति प्रदान करने वाली भार
की सांस्कृतिक राजधानी है।

卐

आदिकाव्य रामायण और राम

संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण आदिकाव्य
नाम से पुकारा जाता है तथा वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। कथा प्रसिद्ध
कि तपस्वियों और वक्ताओं में श्रेष्ठ देवर्षि नारद से एक बार महर्षि वाल्मीकि
ने प्रश्न किया—भगवन्! समस्त संसार में ऐसा कौन है जो अनुपम गुणवा

वलवान्, धर्मज्ञ कृतज्ञ, सत्यवक्ता और दृढ़व्रती हो ? कौन ऐसा पुरुष है जो ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से रहित तथा विद्वत्ता, सच्चरित्रता आदि गुणों से युक्त हो तथा ऐसा सामर्थ्यशाली कौन है, जिसके रण में क्रुद्ध होने पर देवता भी भयभीत होते हों ? आप जैसे समदर्शी मुनि के मुख से उक्त आदर्श-मानव का वृत्तान्त सुनने की वड़ी उत्कट इच्छा है।

नारद ने कहा—मुनिवर, जहाँ तक हमें ज्ञात है, इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न, जग-द्विख्यात राम ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें सभी गुण एकसाथ मिलते हैं। मैं उनकी कुछ विशेषतायें वताता हूँ, ध्यान से सुनिये।

राम सभी शुभ लक्षणों से युक्त, वली तेजस्वी, सुन्दर तथा अच्छे स्वभाव वाले हैं। उनकी प्रकृति अत्यन्त शान्त, सरल तथा सुकोमल है। वे वड़े ही सहृदय, विनयी एवं उदार हैं। उनके चित्त में किसी के प्रति दुर्भाव नहीं है। लोककल्याण के लिए वे वड़े से वड़ा त्याग करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। किसी भी परिस्थिति में वे लोक-धर्म की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। विद्या-वुद्धि में भी उनकी सर्वमान्यता निर्विवाद है। जिस दृष्टि से भी देखा जाय, राम एक आदर्श मानव, नेता और पूर्ण पुरुष प्रतीत होते हैं। सार रूप में यही समझिये कि वे गंभीरता में समुद्र के समान तथा सत्यपालन में दूसरे सत्य के समान हैं। ऐसे महिमावान् पुरुष का परिचय उसके जीवन-चरित से ही मिल सकता है। इसके अनन्तर संक्षेप में नारदजी ने राम का पूरा चरित्र सुनाया, जो वाल्मीकि रामायण के वालकाण्ड के प्रथम सर्ग में निवद्ध है। इसे ही 'मूल रामायण' कहते हैं।

कथा कहकर देवर्षि नारद चले गए। उसके वाद महर्षि वाल्मीकि अपने प्रधान शिष्य भरद्वाज को साथ लेकर तमसा नदी के तट पर गये। तटवर्ती वन का दृश्य अत्यन्त मोहक था। महर्षि उसे देखने में संलग्न थे। वहाँ उन्होंने देखा—क्रौञ्च पक्षी का एक जोड़ा आनन्दपूर्वक विहार कर रहा था। सहसा एक व्याध ने उस विहार करते हुए जोड़े पर वाण चला दिया। नर-पक्षी आहत होकर गिर पड़ा। अनाथिनी क्रौञ्ची अपने चिरसंगी को निहत देख कर अत्यन्त करुण स्वर में विलाप करने लगी। यह दृश्य देखकर महर्षि का कोमल हृदय पिघल गया और उनके मुख से सहसा यह शोकोद्गार निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

अर्थात् हे निषाद ! तुमने काम से मोहित इस क्रौञ्च पक्षी को मारा है, अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो ।

इस छन्दोमयी वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्माजी वहाँ आये और वाल्मीकि से बोले—इसी छन्दोमयी वाणी में राम का विस्तृत चरित्र लिख डालो। बस फिर क्या था ! नारदजी के मुख से राम की जो संक्षिप्त कथा उन्होंने सुनी थी उसी का काव्यमय ढंग से विस्तार कर डाला । फलतः रामायण की रचना हो गयी। लौकिक संस्कृत में रामायण प्रथम छन्दोवद्ध सरस रचना है। इसी से इसे आदि-काव्य कहते हैं। रामायण के सात काण्ड है—(१) वालकाण्ड (२) अयोध्या-काण्ड (३) अरण्यकाण्ड (४) किष्किन्धा काण्ड (५) सुन्दरकाण्ड (६) युद्धकाण्ड (७) उत्तरकाण्ड । पूरा काव्य सर्गवद्ध है । इसमें २४ हजार श्लोक हैं। प्रत्येक हजार का आदि श्लोक गायत्रीमन्त्र के ही अक्षर से आरम्भ होता है। रामायण की कथा प्रसिद्ध है। उपर्युक्त गुणों से युक्त राम इस महाकाव्य के नायक हैं ।

रामायण में राम का चरित्र सर्वाधिक श्रेष्ठ है विभिन्न परिस्थितियों में रह-कर राम ने जिस शील और मर्यादा की रक्षा की, वह अत्यन्त दुर्लभ है। भारत-वासी किसी मानव का आदर्श चरित्र सुनने को लालायित थे, वाल्मीकि ने राम का उदात्त चरित्र प्रस्तुत कर जनता का वड़ा भारी कल्याण किया। वाल्मीकि रामा-यण में अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में ही श्रीरामचन्द्र के जिस शील और स्वभाव तथा सद्व्यवहार आदि गुणों का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है वह निश्चय ही मानवता का आदर्श चित्र है। इसके अनुसार राम बड़े ही रूपवान् और पराक्रमी थे। वे किसी का दोष नहीं देखते थे। सदा शान्तचित्त रहते थे और मीठे वचन वोलते थे। झूठी वात तो उनके मुख से कभी निकलती ही न थी। वे वृद्ध पुरुषों का सदा सम्मान किया करते थे। प्रजा के प्रति उनका परम अनु-राग था। वे परम दयालु, क्रोध को जीतनेवाले और ब्राह्मणों के पूजक थे। शास्त्र-

विरुद्धवातों को सुनने में उनकी कभी रुची नहीं होती थी। धर्म के व मानों साक्षात् अवतार थे– "रामो विग्रहवान् धर्मः"। वे सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात और सांमवेद के ज्ञाता थे। बाण विद्या में तो वे अपने पिता से भी वढ़ कर थे। उनकी स्मरणशक्ति वड़ी तीव्र थी और उनको सामयिक लोकाचार का पूर्ण ज्ञान रहता था। वे काल के वश होकर उसके पीछे चलने वाले नहीं थे। काल ही उनके पीछे चलता था। उन्हें सत्पुरुषों के संग्रह, दीनों पर अनुग्रह तथा दुष्टों के निग्रह के अवसरों का ठीक-ठीक ज्ञान था।

राम की धर्मज्ञता का एक उदाहरण देखिये। वाली ने जव उनके कार्य वालिवध को अन्याय वताते हुए धर्म की दुहाई दी, तो उन्होंने उसकी प्रत्येक वात का खण्डन वड़ी युक्तियों से किया और कहा कि "वालि! तुम्हें यह तुम्हारे पाप का ही दण्ड मिला हैं। तुमने पुत्रवधू के समान छोटे भाई की स्त्री को वलपूर्वक रख लिया है और उस पर वलात्कार किया है। अतः मैंने तुम्हें दण्ड देकर राज-धर्म, मित्रधर्म और अपनी प्रतिज्ञा का ही पालन किया है। उन्होंने अपनी वात की पुष्टि में पूर्वजों द्वारा अपनायी हुइ नीति तथा मनुस्मृति के मत का भी उल्लेख किया है—'श्रूयेते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।'

शरणागत की रक्षा करना उनका जीवनव्रत था। विभीषण की शरणा-गति के प्रसंग में उनके ये वचन कितने मार्मिक हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(यु० का० १८।३३)

धर्मज्ञ एवं शरणागतवत्सल होने के साथ ही वे कृतज्ञ भी थे। उदाहरण के लिए जव हनुमान जी सीता का पता लगाकर लौटे और उनसे मिले तो उनके कृतज्ञताज्ञयापक वचन देखिये—'आज हनुमानजी ने सीता का पता लगाकर धर्मा-नुसार मेरी, समस्त रघुवंश की तथा लक्ष्मण की भी रक्षा कर ली है। मैं दीन हूँ, असमर्थ हूँ, मेरे मन में तो यही वात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा प्रिय कार्य नहीं कर सका।" यह कहकर हनुमान जी को हृदय से लगा लिया। यह है उनकी कृतज्ञता।

धर्मज्ञता, शरणागत-वत्सलता और कृतज्ञता के अतिरिक्त श्रीराम में और भी अनेक गुण थे, जिनकी सूची प्रारम्भ में ही दे दी गई है। माता, पिता, गुरु तथा बड़ों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा तथा भक्ति रहती थी। विमाता को भी वे माता से कम नहीं समझते थे। तभी एक वार वन में लक्ष्मण ने कैकेयी को कुछ कहना चाहा तो उन्होंने तुरन्त रोक दिया और कहा कि 'ऐ लक्ष्मण! मेरे सामने मध्यमा अम्बा कैंकेयी की निन्दा न करो। वह निन्दनीय कदापि नहीं है।' भाइयों पर उनका जो स्नेह था उसका परिचय निम्न पंक्तियों में मिलता है। वे कहते हैं– लक्ष्मण! सत्य और आयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म अर्थ काम तथा सम्पूर्ण पृथ्वी–सव कुछ तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ। भाइयों के लिए ही मैं राज्य चाहता हूँ। भरत, तुम तथा शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता है तो उसमें आग लग जाय और वह जलकर भस्म हो जाय।' साथ ही प्रजाजनों पर उनका कितना अटूट स्नेह था, कि उनके वन जाते समय सारी प्रजा उनके साथ जाने को तैयार हो गयी। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए ही वे अपनी प्रियपत्नी सीता को भी वन भेजने के लिए विवश हुए। वे आदर्श राजा थे। उनके राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था। तभी तो लोग आज भी 'रामराज्य' की दुहाई देते हैं।

इस प्रकार आदिकाव्य रामायण में भगवान् राम का पावन चरित्र वर्णित है। श्रीराम का चरित्र आदर्श मानव का चरित्र है तथा रामायण भारतीय संस्कृत का सन्देशवाहक एक उत्तम ग्रन्थ है। अतः राम के चरित्र को स्मरण रखना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है तथा रामायण का पठन-पाठन सबके लिए आवश्यक है।

卐

भगवान श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण का अवतार सोलहों कला का अवतार था। भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था। भादों की अँधेरी रात थी, चारों

ओर गहन अन्धकार छाया हुआ था। आकाश में भयंकर मेघों की गर्जना हो रही थी। ऐसी निशीथ वेला में माता देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। प्रतिवर्ष श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व हम उन्हीं की याद में मनाते हैं।

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था, उस समय देश में निरंकुश शासन था। यज्ञ और पुण्य कर्म लुप्त हो रहे थे। भाई-भाई का गला काटने में संकोच नहीं करता था। ललनाओं की लाज लुटी जा रही थी। धर्म की मर्यादा नष्ट हो रही थी। अत्याचार और अनाचार का वोलवाला था। मथुरा का शासक कंस, मगध का शासक जरासंध, चेदि देश का शासक शिशुपाल उस समय के स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासक थे। यहाँ तक कि दिल्ली (हस्तिनापुर) के सिंहासन पर आसीन कौरवेश्वर दुर्योधन भी उसी रंग में रंगा हुआ था। ऐसे समय में एक ऐसे सामर्थ्यशाली पुरुष की आवश्यकता थी जो इन दुष्टों का दमन करके पुनः धर्म की प्रतिष्ठा करे। गीता में लिखा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अर्थात् जव-जव धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तव-तव भगवान् अवतार लेकर दुष्टों का दमन करते हैं। इस उक्ति को चरितार्थ करने के लिए भगवान् का अवतार होना स्वाभाविक था।

इनके जन्म की कहानी वड़ी विचित्र है। कंस की बहिन देवकी से कृष्ण के पिता वसुदेव का विवाह हुआ था। कंस वड़ा दुष्ट था। लोगों को बहुत सताता था। उसकी प्रजा उससे तंग आ गयी थी। जब वसुदेव का विवाह हुआ और देवकी उनके घर आ रही थी, तव आकाशवाणी हुई कि देवकी के आठवें गर्भ से जो वालक पैदा होगा, वही कंस के नाश का कारण होगा। कंस को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने यह निश्चय किया कि देवकी के गर्भ से जितने बालक पैदा होंगे, सबका वध कर दूंगा। वस क्या था, जव-जव देवकी गर्भवती होती थीं, उनको जेल में बन्द कर देता था और नवजात शिशु की हत्या कर डालता था। जिस समय आठवें गर्भ की स्थिति आयी उस समय और भी सतर्क होकर पहरे-

दारों को नियुक्त कर दिया। वसुदेव और देवकी जेल में वन्द थे। भादों की अँधेरी निशा में देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का पृथिवी पर अवतार हुआ। भगवान् की ऐसी महिमा कि जन्म के समय सव पहरेदार सो गये। जेल के फाटक खुल गये, माता देवकी तथा पिता वसुदेव की वेड़ियाँ कट गयीं। माता-पिता को यह भय हुआ कि सवेरा होते-होते खैर नहीं है। उसी क्षण गोकुल में नन्द वावा के यहाँ यशोदा के गर्भ से एक लड़की पैदा हुई। पैदा होते ही लड़की की माता सों गयीं। वस क्या था, नन्द के घर जाकर वसुदेव ने उस लड़की को उठा लिया और अपने पुत्र को वहीं रख दिया। सवेरा होने पर कंस को वताया गया कि लड़की पैदा हुई है। कंस तुरन्त आया और उस नवजात वालिका को ज्यों ही मारना चाहा वह वालिका आकाश में उड़ गयी। आकाश से उसने कहा —"रे कंस ! तेरा वैरी पैदा हो गया है। मैं तेरी वैरी नहीं हूँ।" वह भगवती दुर्गा थीं, जो विन्ध्य क्षेत्र में आकर रहने लगीं। तभी से विन्ध्य क्षेत्र में भगवती की पूजार्चना होने लगी और उनका नाम विन्ध्यवासिनी पड़ा। इधर नन्दवावा के यहाँ वालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति वढ़ने लगा। वालक का रंग साँवला था, इसी से उसका नाम 'कृष्ण' रखा गया।

नन्द ग्वालों के सरदार थे। उनके पास गायें अधिक थीं। गोपों के साथ कृष्ण भी गाय चराते थे। वहीं रहकर उन्होंने विविध लीलायें कीं। इन में विशेष वात यह थी कि वे छोटे-वड़े सभी से प्रेम करते थे। लड़कों के खेल में भी इन्होंने कभी अन्याय नहीं होने दिया। वाल्य-काल में ये घी-दूध वहुत खाते थे। कभी-कभी दूसरों के यहाँ हठपूर्वक घी-दूध खाने में भी इनको वड़ा आनन्द आता था। सवसे इनका इतना प्रेम था कि कोई इनके इस काम को वुरा नहीं मानता था। इनको वंशी वजाने से वड़ा प्रेम था। वजाते भी अच्छा थे। पुरुष तथा स्त्रियाँ सभी इनके वंशीवादन पर मुग्ध थे। जिस पाठशाला में ये पढ़ते थे, वहाँ भी इनके सव साथी इन्हें वहुत मानते थे। सुदामा इनकी पाठशाला के ही साथी थे। उस समय देश में स्वेच्छाचारिता का राज्य था। सम्पूर्ण देश किसी एक राजा के अधीन नहीं थां। कृष्ण को यह अच्छा नहीं लगा। जनता के हित के लिए उन्होंने अत्याचारी शासकों का अन्त किया। इससे जनता में इनका अधिक आदर होने

लगा और वे देश के सबसे बड़े नेता हो गये। यहाँ तक कि यह कहावत हो गई की जिधर कृष्ण रहेंगे, उधर ही विजय होगी।

आज कल जहाँ गुजरात प्रदेश है उस समय उसका नाम द्वारिका था। वहाँ के लोगों ने उन्हें अपना राजा बनाया। एक महान् राजा में जो गुण होने चाहिए, वे सब कृष्ण में मौजूद थे। सारी प्रजा उनके शासन से सन्तुष्ट थी।

जहाँ आज दिल्ली है, वहाँ उस समय हस्तिनापुर था। वहाँ जो लोग राज्य करते थे कई भाई थे उनमें आपस में झगड़ा हो गया। कृष्ण से उनकी रिश्तेदारी थी। अर्जुन से कृष्ण की बहिन सुभद्रा का विवाह हुआ था। अर्जुन और उनके चार भाई एक ओर थे और उनके चचेरे भांई दुर्योधन तथा उनके साथी एक ओर। दोनों ने कृष्ण से सहायता मांगी। कृष्ण ने झगड़े को शान्त करने का बड़ा प्रयत्न किया, पर दुर्योधन ने एक न सुनी। अन्त में कौरवों और पाण्डवों में युद्ध छिड़ गया। कृष्ण न्याय का पक्ष लेकर अर्जुन अर्थात् पाण्डवों की ओर थे। इतना ही नहीं, लड़ाई के वे ही नेता थे। अठारह दिन तक युद्ध हुआ। पाण्डवों की विजय हुई। उस युद्ध में कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि बड़े-बड़े वीर मारे गए।

इसी युद्ध के बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। यह गीता आज भी विश्व में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है। गीता में सम्पूर्ण वेद और शास्त्रों का निचोड़ है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने ही कहा है कि गीता के ही ज्ञान के बल पर मैं तीन लोकों का पालन पोषण करता हूँ।

गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीन् लोकान् पालयाम्यहम्।

महाभारत की लड़ाई के बाद कृष्ण बहुत दुःखी हुए। देश की दुर्दशा से उन्हें बहुत पीड़ा हुई। एकसौ बीस वर्ष तक जीवित रहने के बाद उन्होंने शरीर छोड़ा।

कृष्ण की प्रशंसा में हजारों पुस्तकें लिखी गयी हैं। महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों में उनका विस्तृत जीवनचरित्र अंकित है। श्रीकृष्ण ने ऐसे आदर्श कार्य किये कि पाँच हजार वर्ष बीतने पर भी आज उनकी यशोगाथा बड़े आदर के साथ गायी जाती है।

卐

महात्मा बुद्ध

महात्मा बुद्ध का नाम किसने न सुना होगा। राम और कृष्ण की तरह बुद्ध भी अवतारी पुरुष थे। संसार में शान्ति, अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि का प्रचार करने वाले ये ही महात्मा थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित धर्म का नाम बौद्ध धर्म है। इनके धर्म के अनुयायी न केवल भारतवर्ष में अपितु वर्मा, चीन, जापान, हिन्दचीन, लङ्का, नेपाल आदि अन्य देशों में भी हैं। इसी से इनका धर्म अन्तराष्ट्रीय धर्म कहलाता है।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व की बात है नेपाल की तराई में गोरखपुर से उत्तर कपिलवस्तु नाम का एक नगर था। यहीं पर शाक्यवंशीय राजा शुद्धोदन की स्त्री माया देवी के गर्भ से वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को लुम्बिनी वन में इस दिव्य पुरुष का अवतार हुआ। ज्योतिषियों ने बताया कि यह बालक अत्यन्त तेजस्वी होगा और संसार को अपने उपदेशामृत से तृप्त करेगा।

जन्म के सातवें दिन माता का देहान्त हो गया। उसकी विमाता प्रजावती ने उनका लालन-पालन किया। उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। सिद्धार्थ की शिक्षा-दीक्षा अच्छे गुरुओं की देखरेख में हुई। थोड़े दिनों में वह सभी विद्याओं में पारंगत हो गये।

सिद्धार्थ बचपन से ही संसार से विरक्त रहने लगे। पिता उनकी यह दशा देखकर चिन्तित रहने लगे। सांसारिक मोहमाया में फँसाने के लिए राजा ने बहुत से जाल बिछाये। एक सुन्दर उपवन बनवाया गया, उसमें सुख के सभी साधन जुटाये गये। किन्तु सिद्धार्थ का मन उन सुख-साधनों में नहीं लगा। वह एकान्त में बैठकर चिन्तन करना अधिक पसन्द करते थे।

राजकुमार सिद्धार्थ स्वभाव से ही दयालु थे। किसी को जरा भी दुःखी देखकर उनका हृदय पिघल जाता था। एक दिन की घटना है—वे अपने चचेरे भाई देवदत्त के साथ नदी के किनारे खेलने जा रहे थे। आकाश में हंसों का एक झुण्ड दिखाई दिया। देवदत्त ने बाण चलाया, जो एक हंसों को लगा और वह घायल होकर जमीन पर गिर पड़ा। उसको देखकर सिद्धार्थ का जी भर आया।

उन्होंने उसे उठा लिया और हाथ से उसे पुचकारने लगे। इधर देवदत्त राजकुमार के पास पहुँचकर हंस को माँगने लगा। उन्होंने देने से इनकार कर दिया। दोनों में वड़ी वहस छिड़ी। इतने में वहाँ एक योगिराज पहुँचे। उन दोनों को झगड़ते देखकर योगिराज ने कहा कि यह हंस राजकुमार का है; क्योंकि इन्होंने ही इसकी जान वचाई है। देवदत्त तो इसे मार चुका था। यह सुनकर देवदत्त अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

राजकुमार सिद्धार्थ के सम्वन्ध में विचित्र वातें देखते-सुनते हुए राजा की चिन्ता वढ़ती जाती थी। अन्त में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि राजकुमार का विवाह करके उसको गृहस्थी के जाल में फँसा देना चाहिए। फलतः यशोधरा नाम की राजकुमारी के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ। यशोधरा वड़ी सुन्दर स्त्री थी। भोगविलास से सम्पन्न महल में पति-पत्नी रहने लगे। राजा निश्चिन्त से हो गये। राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अव राजकुमार के लिए संसार छोड़ना सम्भव नहीं। कुछ दिन वाद यशोधरा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'राहुल' रखा गया। किन्तु इतना होने पर भी राजकुमार दिन-रात चिंतन में मग्न रहा करते थे।

एक दिन राजकुमार ने अपने सारथी छन्दक से रथ लाने को कहा, वह रथ पर चढ़ कर वगीचे की ओर चले। रास्ते में एक वुड्ढा दिखलाई पड़ा, जिसकी कमर झुक गयी थी और जो लाठी के वल किसी तरह चल रहा था। उसके सिर के वाल सफेद हो गये थे। आँखें धस गयी थीं। शरीर में केवल हड्डियाँ ही रह गयीं थीं उसे देखकर राजकुमार का हृदय पसीज गया। उन्होंने सारथी से पूछा कि यह आदमी इस तरह क्यों चल रहा है और इसके वाल सफेद क्यों हो गये हैं? सारथी ने कहा कि यह आदमी वुड्ढा है। वुड्ढा होने पर सवका यही हाल होता है। इसी तरह दूसरे दिन राजकुमार ने देखा कि चार मनुष्य एक मनुष्य को उठाये जा रहे हैं, वह मर गया था। पूछने पर वताया गया कि सभी लोग एक दिन मर जायेंगे। ऐसे ही और भी घटनायें हुयीं। इन घटनाओं को देखकर उनके मन में यह आया कि संसार में दुःख ही

दुःख है, अतः ऐसा उपाय करना चाहिए कि दुःखों से मुक्ति मिल जाये। अब इसी चिन्तन में बरावर रहा करते थे ।

रात का समय था। सब लोग सोये हुए थे सिद्धार्थ धीरे से उठे। स्त्री औं पुत्र को उन्होंने एक वार देखा और वाहर आये। सारथी को जगाया। सार के साथ कन्थक नाम के घोड़े पर सवार होकर कपिलवस्तु से विदा हुए। बौ ग्रन्थों मे इसे सिद्धार्थ का 'महाभिनिष्क्रमण' कहा गया है। कुछ दूर जाव राजसी वस्त्रों के साथ उन्होंने सारथी को भी लौटा दिया और ज्ञान की खो में निकल पड़े।

सिद्धार्थ एक जंगल में जाकर तपस्या करने लगे। तपस्या से उन्होंने अप शरीर सुखा डाला। वाद में गया में जाकर पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानम होकर उन्होंने वुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। तभी से वे वुद्ध कहलाने लगे। जि वृक्ष के नीचे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, उस वृक्ष का नाम 'वोधिवृक्ष' पड़ा।

वुद्ध गया में ज्ञान प्राप्तकर वे वाराणसी (सारनाथ) गये। वहीं पर उन्हों विश्व-कल्याण के लिए अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया। वहाँ ती मास रहकर उन्होंने वौद्ध धर्म की सम्यक् व्याख्या की और बहुत से लोगों शिष्य वनाया। इसके वाद वे जगह-जगह घूमकर अपने धर्म की वातों जनता को आकृष्ट करने लगे। उनकी वाणी में आकर्षण था। भाषा वोलचा की थी। फल यह हुआ कि वड़े-वड़े राजा लोग उनके शिष्य वन गये। उन संघ का नाम 'भिक्षुसंघ' पड़ा।

वुद्ध भगवान् ने अपने धर्म का प्रचार भारत के कोने-कोने में किया उनके शिष्यों ने तिव्वत, वर्मा, लंका, चीन, जापान आदि देशों में भी अप धर्म का प्रचार किया। उनके धर्म की मुख्य वातें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्म चर्य आदि हैं। उनका धर्म व्यापक था। उसमें संकीर्णता न थी। यही कार है कि आज भी वौद्धधर्म जीवित ही नहीं, अपितु आदृत भी है।

४५ वर्षों तक अपने उपदेशामृत से जन-जीवन को तृप्त कर देवरिया ज पद के कुशीनगर नामक स्थान में भगवान् वुद्ध ने अपना देहत्याग किया। बौ ग्रन्थों में इसे 'महापरिनिर्वाण' कहा जाता है।

卐

महात्मा गान्धी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी न केवल भारत की, अपितु विश्व की एक महान् विभूति थे। वे सफल राजनीतिक नेता, कुशल समाज सुधारक तथा सच्चे अर्थों में सन्त थे। समाज और राजनीति के सभी क्षेत्रों में उनका बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार था। अंग्रेजों के पराधीनतापाश में आबद्ध भारतभूमि को स्वतन्त्र करने का अधिक श्रेय महात्मा गांधी को ही है। इनका असली नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। अपने लोकोत्तर गुणों के कारण ही ये 'महात्मा' की उच्च उपाधि से विभूषित किये गये।

महात्मा गांधी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ ई० में पोरबन्दर (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम कर्मचन्द था। वे पोरबन्दर रियासत के दीवान थे। गांधीजी की माता 'पुतलीबाई' बड़ी धर्मनिष्ठ महिला थीं। गांधीजी का विवाह १३ वर्ष की छोटी आयु में कर दिया गया। इनकी धर्मपत्नी का नाम 'कस्तूरबा' था।

गांधीजी की प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट और भावनगर में हुई। ये मैट्रिक परीक्षा पास करके बैरिस्टर बनने के लिए इंगलैण्ड पढ़ने चले गये थे। जाते समय इनकी माता ने इनसे तीन प्रतिज्ञाएँ करा ली थीं—१. कभी मांस नहीं खायेंगे, २. कभी शराब नहीं पीयेंगे और ३. कभी किसी दूसरी स्त्री का संग नहीं करेंगे। गांधी ने अपनी माता की इन शिक्षाओं का जीवन भर पालन किया। बैरिस्टरी आरम्भ की, किन्तु चली नहीं। कुछ समय के बाद वे एक मुकदमे की पैरवी के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका गये। वहाँ उनकी वकालत खूब चली। वहीं से उनके राष्ट्रीय जीवन का श्रीगणेश होता है। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की दयनीय दशा देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और उन्होंने उनकी सहानुभूति में सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण सफल रहा। भारतीय नेताओं की दृष्टि बरबस आकृष्ट हुई। बस क्या था, गांधीजी का नेतृत्व सबलोग मानने लगे।

प्रथम महायुद्ध छिड़ जाने पर गांधीजी भारत आये। अंग्रेजों ने लड़ाई में

सहायता माँगते समय भारत को स्वतन्त्र कर देने का वचन दिया था, परन्तु लड़ाई की समाप्ति पर वह वचन पूरा नहीं किया गया। यही नहीं, वदले में भारतीयों का वुरी तरह दमन किया गया। जलियाँ वाले वाग की घटना उसी समय घटी, जिसमें हजारों भारतीय अंग्रेजी फौज की गोलियों से भून दिये गए। गांधीजी ने इसी समय असहयोग आन्दोलन चलाया। हजारों व्यक्ति जेल गये। स्वयं गांधीजी भी जेल में वन्द कर दिये गये।

जेल से छूटने पर गांधीजी ने खादी का प्रचार कार्य और ग्रामसुधार-कार्य आरम्भ कियें। सावरमती में उन्होंने एक आश्रम वनाया। यहीं से उन्होंने रचनात्मक कार्यों का संचालन आरम्भ किया।

सन् १९३० में इतिहास-प्रसिद्ध, गांधीजी की दांडी-यात्रा हुई। उन्होंने नमक के कानून को तोड़ा और फिर सत्याग्रह चलाया। १९३१ में तत्कालीन भारत के वायसराय लार्ड इरविन के साथ समझौता हुआ और सत्याग्रह स्थगित हो गया। इसी वर्ष कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में 'गोलमेज कान्फ्रेंस' में भाग लेने के लिए वे लन्दन गये। अंग्रेजों के साथ कोई समझौता न हो सका। जव गांधीजी लन्दन से भारत लौट रहे थे तो वम्वई में आते ही कैद कर लिये गये। जेल में ही उन्होंने अंग्रेजों के द्वारा हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् करने के विरोध में आमरण अनशन किया। वाद में समझौता हुआ और वे जेल से छोड़ दिये गये।

सन् १९४२ में गांधीजी ने 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि गांधीजी तथा दूसरे नेताओं को अंग्रेजी सरकार ने जेल में वन्द कर दिया। महात्माजी का यह क्रांतिकारी अभियान था। इससे अंग्रेजी शासन थर्रा गया। फलतः थोड़े ही दिनों में गांधीजी तथा अन्य सभी नेता जेल से छोड़ दिये गये। इस वार अंग्रेजों को यह निश्चय हो गया कि भारत को स्वाधीन करना अपरिहार्य है।

अन्त में महात्मा गांधी के सतत प्रयत्नों से हमारा देश १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतंत्र हो गया। किन्तु इस स्वतंत्रता के लिए भारत को वहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। अंग्रेजों की धूर्तता सफल हुई। भारत को दो टुकड़ों में

विभाजित होना पड़ा। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति रही कि महात्माजी उस विभाजन का खुलकर विरोध नहीं कर सके। स्वतन्त्रता की प्रसन्नता आधी रही।

महात्मा गांधी ईश्वर पर अधिक विश्वास करते थे। उनके लेखों और व्याख्यानों में वार-वार ईश्वर की दुहाई दी गयी है। उनका कथन है कि मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति तथा आत्मज्ञान है। उस ईश्वर-प्राप्ति के लिए वे वाह्य पूजा-पाठ आदि आचारों के उतने पक्षपाती नहीं थे, जितने आन्तरिक गुण सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, उपकार आदि के। उनमें ये सव गुण कूट-कूट कर भरे थे। सत्य और अहिंसा के वे मानो मूर्तिमान स्वरूप थे। ईश्वर-प्राप्ति के वास्तविक साधन भी येही हैं। सत्य पर प्रतिष्ठित राजनीति और अहिंसा पर प्रतिष्ठित रणनीति ही महात्मा गांधी की सवसे वड़ी देन है।

महात्माजी द्वारा चलाया हुआ खादी-उद्योग-आन्दोलन न केवल राज-नीतिक आन्दोलन था, अपितु वह एक विशुद्ध सांस्कृतिक आन्दोलन था। उनको भारत में अंग्रेजों के शासन का वोझ उतना नहीं अखरता था, जितना अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति का वोझ। उन्होंने खद्दर पहना कर देश का वड़ा भारी उपकार किया। खद्दर सादे जीवन का एक सही प्रतीक है।

महात्मा गांधी भारत में 'रामराज्य' की पुनः प्रतिष्ठा चाहते थे। खेद है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद वे जल्दी चले गये। राम के वे इतने भक्त थे कि प्रति-दिन प्रार्थनासभा में 'रामधुन' करते थे। और अन्त में भी उनके मुख से केवल 'राम' ही निकला। आज देश में हम सही रामराज्य लाना चाहते हैं, तो महात्माजी द्वारा निर्दिष्ट धर्म के प्रति हमें जागरूक रहना होगा; क्योंकि भार-तीय राजनीति का मूल आधार धर्म ही है। गांधीवाद भी धर्म का अविरोधी है। इसी से वह रामराज्य का समर्थक है।

भारत को स्वतन्त्रता दिलाने वाले तथा विश्व को एक नई दिशा देनेवाले महात्मा गांधी का निधन भी वड़े विचित्र ढंग से हुआ। ३० जनवरी सन् १९४८ को दिल्ली में जव वे प्रार्थना-सभा में थे, हत्यारे नाथूराम ने उनके भौतिक शरीर का क्षण भर में अन्त कर दिया। विजली की तरह यह खवर विश्व भर में व्याप्त

हो गई। जिसने सुना वही रोया। यद्यपि आज महात्मा गांधी नहीं हैं, फिर भी उनकी कृतियाँ अविस्मरणीय हैं।

卐

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

मानवता की महनीय मूर्ति महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का नाम, कौन ऐसा शिक्षित होगा, जिसने न सुना हो। मालवीयजी का जीवन जितना ही सादा था, उनके विचार उतने ही ऊँचे थे। आधुनिक युग के वे ऋषि थे। उनकी वाणी में एक अजीव जादू था। तभी तो उनके पास जानेवाला व्यक्ति वरवस आकृष्ट हो जाता था। उनकी सबसे वड़ी विशेषता यह थी कि वे संकीर्ण मनोवृत्ति के नहीं थे। उनका कुटुम्ब सारी वसुधा थी। प्राणियों पर दया करना और दीनों का दुःख दूर करना उनका सहज धर्म था। वे बाहर से जितने सौम्य एवं स्वच्छ थे, भीतर से भी उतने ही सहृदय एवं शुद्ध थे।

महामना मालवीयजी का जन्म पौष कृष्ण अष्टमी संवत् १९१८ अर्थात् २५ दिसम्बर सन् १८६१ को एक मालवीय ब्राह्मण परिवार में प्रयाग की पावन भूमि पर हुआ था। उनके पिता पं० व्रजनाथजी व्यास बड़े विनम्र एवं सदाचारी ब्राह्मण थे। अपनी सारी सदाशयता बालक मदनमोहन में भरने की उनकी प्रवल इच्छा रहती थी। वे पुत्र को पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा हुआ देखना नहीं चाहते थे। वे जानते थे कि वचपन में मनुष्य को जैसी सभ्यता में रखा जायेगा, भविष्य में भी वह उसी का भक्त होगा। फलतः मालवीयजी की शिक्षा के लिए उन्होंने संस्कृत पाठशाला को ही उचित समझा। सर्वप्रथम मालवीयजी को संस्कृत की ही शिक्षा दी गयी वाद में उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भेजा गया। फलतः उन्होंने सन् १८७९ में हाईस्कूल परीक्षा, १८८१ ई० में एफ० ए० परीक्षा तथा सन् १८८४ में वी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। आर्थिक उलझनों के कारण वे एम०ए० न कर सके। उन्होंने १८९१ ई० में एल०एल० वी० की परीक्षा पास की।

सन् १८८४ ई० से लेकर १८८७ ई० तक मालवीयजी ने प्रयाग के राजकीय

हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य किया। पुनः उन्होंने कालाकांकर से निकलनेवाले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पत्र का सम्पादन किया। आगे चलकर वे अनेक पत्रों के सम्पादक तथा संचालक हुए। जैसे—अभ्युदय,. मर्यादा, सनातन धर्म आदि। ,सनातन धर्म' के माध्यम से उन्होंने सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

समाचारपत्रों के सम्पादन से अतुल कीर्ति प्राप्त कर उन्होंने गुरुजनों एवं मित्रों के आग्रह से एल. एल. बी. परीक्षा पास की तथा वकालत का कार्य आरम्भ किया। थोड़े दिनों में वे एक अच्छे वकील हो गये। इसी बीच देश में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। उन्होंने वकालत छोड़कर देश-सेवा का व्रत ले लिया और कांग्रेस की कई सभाओं में उनका ओजस्वी भाषण हुआ, जिससे जनता में उनका नाम हो गया।

धार्मिक क्षेत्र में मालवीयजी ने जो कार्य किया वह युग के अनुरूप था। यहीं कारण है कि वे धर्म के अवतार कहे जाते थे। वे सनातन हिन्दूधर्म को संकीर्णता से ऊपर उठाना चाहते थे। सन् १९०६ ई० में प्रयाग कुम्भ के समय उन्होंने सनातन धर्म का एक वृहत् सम्मेलन बुलाया। उस सम्मेलन में 'सनातन धर्म संग्रह' नामक एक वृहत् ग्रंथ प्रस्तुत किया गया, जिसमें धर्म की बारीकियों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया था। सबने उस ग्रंथ का हृदय से स्वागत किया। उसी सम्मेलन में उनकी विश्वविद्यालय-निर्माण योजना उपस्थित हुई और सबने उसका अभिनन्दन किया। 'अखिल भारतीय सनातनधर्म महासभा' की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था, महामना का सनातन धर्म इतना महान् हैं कि उसमें समग्र संसार समा सकता है। वे अछूतोद्धार चाहते थे, कोरी वाणी से नहीं, अपितु कार्यरूप में। उसके लिए १९२७ ई० में उन्होंने काशी में एक सभा कर चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को समान भाव से मन्त्र दीक्षा दी थी। यह थी महामना की धार्मिक उदारता।

वे अंग्रेजी भाषा के अच्छे विद्वान् होते हुए भी संस्कृत और हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और प्रेम रखते थे। संस्कृत और हिन्दी के वे एक सफल कवि भी थे। संस्कृत के अनेक श्लोक उनको कंठस्थ थे। संस्कृत भाषा में लिखित उनके

श्लोक समाज के लिए कितने उपयोगी होते थे, यह दो-एक उदाहरणों से देखा जा सकता है—

"ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा ।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वे महोत्सवः ॥
अनाथा विधवा रक्ष्या मन्दिराणि तथा च गौः ।
धर्म्यं सङ्घटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम् ॥
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा ।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः ॥"

पुराण-कथा के वे बड़े भारी पक्षपाती थे । स्वयं प्रतिदिन भागवत पुराण का पाठ करते थे । यह था उनका संस्कृत-प्रेम ।

हिन्दी भाषा के समर्थन में उनका अपूर्व योग रहा है । श्रीभारतेन्दु के इन वाक्यों का समर्थन करने वाले हमारे महामना ही थे ।

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।।'

हिन्दी भाषा में जब वे व्याख्यान देते थे, तो साक्षात् सरस्वती उनके मुख से निकलती हुई जान पड़ती थीं ।

महामना मालवीयजी का सबसे बड़ा कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना है । पढ़ते समय ही उन्होंने मन में यह संकल्प किया था कि शिक्षा का भारतीयकरण होना चाहिए और एक ऐसी संस्था होनी चाहिए जहाँ पूर्ण भारतीय पद्धति से शिक्षण कार्य हो सके । वे चाहते थे कि प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों की तरह एक ऐसा विश्वविद्यालय होना चाहिए, जिसमें वेद-वेदांग, आधुनिक विषय सभी भारतीय पद्धति से पढ़ाये जायें । छात्र पढ़कर अपनी सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान रखें । विदेशी शिक्षा पद्धति से देश के पतन को वे देख रहे थे । फलतः उन्होंने अपने मानस-संकल्प को साकार रूप दिया और १९१६ की वसन्त पंचमी को, जो सरस्वती का दिवस है, काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना कर दी । विदेशी सत्ता उसके पक्ष में नहीं थी, अतः आर्थिक सहायता का प्रश्न जटिल हो गया । किन्तु अच्छे कार्य के लिए पैसा बाधक नहीं हो सकता । उनकी

वाणी में आकर्षण था ही। ब्राह्मण थे ही। शिक्षा के पवित्र यज्ञ में सहायता देने के लिए उन्होंने एक मार्मिक अपील निकाली। उस अपील से प्रभावित होकर धन देने वालों का ताँता लग गया। बात की बात में कई लाख रुपये एकत्र हो गए। विश्वविद्यालय बनने लगा और उनके जीवनकाल में ही वह दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। आज उसका रूप सबके सामने है। विश्व में वह एक अपने ढंग की निराली शिक्षा-संस्था है।

मालवीय जी विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति थे। बाद में भी वे वहीं रहते थे और विश्वविद्यालय की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। वे विद्यार्थिवर्ग का बड़ा आदर करते थे जिस किसी समय उनके पास जो कोई विद्यार्थी पहुँच जाता था उसका कार्य तुरन्त कर देते थे। विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं रखी। उनके समय में कोई छात्र आर्थिक कमी के कारण पढ़ना छोड़ दे, ऐसा नहीं था। वे उसकी पूर्ण सहायता करते थे।

आजीवन देश की सर्वविध सेवा करते हुए महामना मालवीय का महाप्रयाण १२ नवम्बर सन् १९४६ को विश्वविद्यालय भवन में ही हुआ। देश उनके निधन से व्याकुल हो उठा। प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों सभ्यताओं के पक्षपातियों को उनका अभाव शूल की तरह खटकने लगा। किन्तु, क्या किया जाये, विधि की यही विडम्बना है।

सृजति तावदशेगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेद्
अहह ! कष्टमपण्डितता विधेः॥

卐

पंडित जवाहरलाल नेहरू

इस युग के महापुरुष पं० जवाहरलाल नेहरू का जीवन त्याग और वलिदान का जीवन था। आज विश्व में चारों ओर संघर्ष का वातावरण छाया हुआ है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने का स्वप्न देख रहा है। युद्ध की तैयारियों में अनेक संहारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो रहा है। इस भयंकर परिस्थिति में शान्ति का दिव्य सन्देश लेकर चलने वाले अकेले पं० नेहरू ही थे। अन्तर्राष्ट्रिय क्षेत्र में पं० जी का जो सम्मान एवं आदर था अन्य किसी राष्ट्र के नायक का नही था। भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत भाषा के प्रति उनकी वहुत आस्था थी।

भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवारलाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर १८८९ ई० को प्रयाग नगर में एक काश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित मोतीलाल नेहरू था तथा माता का नाम स्वरूपरानी था। पं० मोतीलाल नेहरू तत्कालीन वैरिस्टरों में अग्रणी थे। उनकी आय वड़ी अच्छी थी। अतः अपने एकमात्र पुत्र जवाहरलाल जी को उचित से उचित शिक्षा देने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं रखी। जवाहरलाल जी का वचपन वड़ी शान-शौकत से वीता। वे किसी राजकुमार से कम नहीं थे। उस समय में अंग्रेजों का प्रभुत्व था। अतः शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन आदि में वड़े लोग उन्हीं का अनुकरण करते थे। पं० मोतीलाल ने भी ऐसा ही किया और वालक जवाहर को १५ वर्षों तक घर पर ही रखकर अच्छे से अच्छे अध्यापकों से प्रारम्भिक शिक्षा दिलायी। तदनन्तर उन्हें इंगलैण्ड भेजा गया। वहाँ की प्राचीन संस्था हैरो में कुछ दिन पढ़ने के वाद कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उनको अध्ययन करने के लिए भेजा गया। वहाँ रहकर उन्होंने वी० एस-सी० और एम० ए० की परीक्षा पास करने के वाद वकालत (वार एट-ला) की परीक्ष भी पास की। वहाँ से एक अच्छे वकील वन कर जवाहरलाल जी पुनः भारत लौटे।

शिक्षा-काल में ही उन्होंने पश्चिमी देशों का भ्रमण किया और वहाँ की स्वाधीनता,नवचेतना,नये-नये आविष्कार आदि देखकर भारत की पराधीनता एवं पिछड़ेपन का स्मरण किया। उनके मन में उसी समय स्वदेश को स्वतंत्र एवं

उन्नत बनाने की भावना जम गयी और मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने का संकल्प कर डाला। अतः इंगलैण्ड से लौटने के बाद तुरन्त १९१२ ई० में वे कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। तब से बराबर कांग्रेस के कार्यों में भाग लेते रहे।

अपने पिताजी के साथ ही जवाहरलाल जी ने भी प्रयाग में वकालत करना आरम्भ किया। १९१६ में उनका विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। उनकी धर्मपत्नी का नाम कमला नेहरू था। १९१७ ई० में ही उनकी एकमात्र सन्तान श्रीमती इन्दिरा का जन्म हुआ। १९१४ ई० में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका-निवासी भारतीयों के अधिकार-रक्षा के निमित्त महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये सत्याग्रह-आन्दोलन में पाँच हजार रुपये की धनराशि सहायतार्थ भेजी थी। इनकी गांधी जी के प्रति अगाध निष्ठा थी। वे जानते थे कि एकमात्र गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन ही भारत से अंग्रेजों को हटा सकता है। यही कारण था कि प्रारम्भ में ही उन्होंने उस आन्दोलन को सहायता दी।

पं० जवाहरलाल जी की जीवन-गाथा कांग्रेस की गाथा से परे नहीं है। आरम्भ से ही वे कांग्रेस के सक्रिय सदस्य रहे और देश की आजादी में काम करते हुए इन्होंने अनेक यातनाएँ सहीं। जिस समय प्रथम महायुद्ध छिड़ा, उस समय कांग्रेस में दो दल थे। एक का नाम गरम दल था और दूसरे का नाम नरम दल। गरम दल के नेता थे लोकमान्य तिलक तथा नरम दल के नेता थे महात्मा गांधी। अंग्रेजी सरकार ने यह घोषणा की थी कि जब युद्ध समाप्त हो जायेगा तब भारत को औपनिवेशिक स्वतन्त्रता दे दी जायेगी। इसी आधार पर भारत ने इंगलैण्ड की पूरी मदद की थी। पर युद्ध समाप्ति के बाद भारत को कुछ भी हाथ नहीं लगा। परिणामतः सारे देश में असन्तोष की लहर फैल गयी। 'होमरूल' आन्दोलन ने सारे देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। पण्डितजी के हृदय पर इन सब बातों का पूर्ण प्रभाव पड़ा और वे पूर्ण रूप से इस आन्दोलन में भाग लेकर कार्य करने लगे। वे होमरूल संघ के मन्त्री थे।

१९१९ में महात्मा गांधी ने भारत में सत्याग्रह आन्दोलन की घोषणा की। पण्डित जी भी महात्मा जी के प्रभाव में आ गये। यद्यपि उनके पिता मोतीलाल जी की इच्छा नहीं थी कि ये सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लें, फिर भी

इन्होंने भाग लिया। उसी समय पंजाब का 'जलियाँ वाला बाग' काण्ड हुआ जिसमें हजारों मनुष्यों की जान ले ली गयी थी। एक स्वर से इस हत्या की निन्दा हुई। फलतः सरकार ने इस काण्ड की जाँच-पड़ताल के लिए कमीशन नियुक्त किया। उस कमीशन में पं० नेहरू भी थे। जब उसकी रि प्रकाशित हुई तो सभी ने मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा की।

पण्डित जी ने कांग्रेस का सक्रिय सदस्य होकर और महात्मा गांधी के प्रभाव में आकर जिस त्याग का परिचय दिया वह सर्वविदित है। उन्होंने अपने राजसी वस्त्र त्याग कर खादी के मोटे वस्त्र धारण किए, अपनी वकालत छो कर देश के कार्यों में दर-दर की ठोकरें खायीं और अनेक बार जेल की यात सहीं। राष्ट्रिय कांग्रेस से इनका बहुत गहरा सम्बन्ध था। १९०३ ई० में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था तो वे एक दर्शक की दृष्टि से वहां थे। तब से प्रायः सभी कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेते रहे। जिस जेलों में रहते थे, उसी समय अधिवेशनों में भाग नहीं ले पाते थे। फल १९२३ ई० में कांग्रेस के महामन्त्री बनाये गए। आगे लाहौर कांग्रेस लखनऊ कांग्रेस में आप अध्यक्ष भी रहे।

पण्डित जी अपनी पत्नी कमला जी को बड़ा प्यार करते थे। कमल भी पण्डित जी को उसी तरह प्यार करती थीं; किन्तु दुःख है कि अकाल कमला जी काल का ग्रास बन गयीं। जब कमला जी बीमार पड़ीं तो नेह ने उनका इलाज स्वीटजरलैण्ड जाकर कराया, पर भयंकर बीमारी थी, नहीं हुई। अन्त में वे चल बसीं। नेहरू जी बहुत दुःखी हुए, पर कर ही सकते थे।

सन् १९३९ में जब दूसरा युद्ध छिड़ा, तो अंग्रेजों ने भारत से सह माँगी। इसके लिए इंगलैण्ड से सर क्रिप्स आये। पर महात्मा गांधी और नेहरू आदि देश के गण्यमान्य नेता सहायता देने के पक्ष में नहीं थे और को निराश होकर लौटना पड़ा। क्रिप्स के चले जाने पर सरकार और में गहरी खाई पड़ गयी। सन् १९४२ की ७ अगस्त को बम्बई में

कांग्रेस कमेटी की वैठक हुई और उसमें 'भारत छोड़ो' नामक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया गया। फलस्वरूप देश में क्रान्ति की आग लग गयी और सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। पण्डित जी भी गिरफ्तार किये गये। पण्डित जी ढाई साल तक आगा खाँ पैलेस में नजरवन्द रहे। इसके पश्चात् १९४५ में आप नैनी सेन्ट्रल जेल लाये गये। फिर वहाँ से बरेली भेज दिये गये। १९४५ में पुनः सवके साथ जेल से छोड़े गये। आप जव जेल से छूट कर प्रयाग में आये तब आपका स्वागत एक वादशाह की तरह हुआ था।

जेल से छूटने पर पण्डित जवाहरलाल जी पुनः देश के कार्य में लग गये। फलतः १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया। पण्डित जवाहरलाल जी उसके प्रधानमन्त्री वनायें गये। देश के कोने-कोने में इस समाचार से प्रसन्नता की लहर उमड़ पड़ी। तव से जीवन पर्यन्त वे इस पद पर आसीन रहे। पण्डित जी के नेतृत्व में भारत की सर्वतोभावेन उन्नति हुई है। आज विश्व में भारत की जो प्रतिष्ठा वढ़ी हुई है, वह उन्हीं की देन है।

पण्डित नेहरू एक कुशल वक्ता, उत्कृष्ट ग्रन्थ लेखक, अच्छे उद्भावक तथा प्रिय नेता थे। उनके कार्य करने की प्रणाली वड़ी विलक्षण थी। किसी भी कार्य को वे वड़ी शीघ्रता से करना चाहते थे। वृद्धावस्था में भी उनमें जो एक अपूर्व उत्साह एवं कार्य करने की लगन दिखायी देती थी वह अन्यत्र कठिन है। वे विश्व में शान्ति की स्थापना चाहते थे। विश्वबन्धुत्व उनका लक्ष्य था। वे युद्ध के घोर विरोधी थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि यदि कोई आक्रमण करे तो वे चुप रहते। इसका अर्थ केवल इतना ही था कि वे स्वयं किसी पर आक्रमण करने के पक्षपाती नहीं थे। यदि कोई आक्रमण करता है तो वे उसका डटकर मुकाविला करने के पूर्ण पक्षपाती थे। चीन ने जव भारत पर आक्रमण किया था, उस ससय पण्डितजी ने उसका डटकर मुकाविला किया और चीन को पीछे हटना पड़ा।

हर सम्भव प्रयत्न से देश की उन्नति करने वाले, हिमालय की तरह अडिग तथा सागर की तरह गम्भीर पण्डित नेहरू का निधन दिल्ली में २७ मई सन् १९६४ को अकस्मात् हृदयगति वन्द होने के कारण हो गया। उनके निधन से देश की जो क्षति हुई वह अपूरणीय है।

卐

महाकवि कालिदास

कविकुलगुरु कालिदास की गणना न केवल भारत की, अपितु विश्व की महान् विभूतियों में की जाती है। ऐसी महाविभूति को पाकर भारत भूमि का सिर उन्नत होना स्वाभाविक है। कालिदास की वाणी इतनी समर्थ है, उनके वर्णन इतने सजीव हैं, उनकी भाव-भूमि इतनी उदार एवं उदात्त है कि उनको महाकवि के साथ-साथ महामानव भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर सरसता का साम्राज्य है वहाँ दूसरी ओर लोकप्रियता का भाव है, जहाँ एक ओर अलङ्कारों का सहज सौन्दर्य है, वहाँ दूसरी ओर यथार्थता कूट-कूट कर भरी पड़ी है तथा जहां एक ओर प्रकृति का स्वाभाविक वर्णन है, वहाँ दूसरी ओर लोक के साथ उसका पूर्ण सामञ्जस्य भी है। यही कारण है कि उनकी कविता सर्वप्रिय है। महर्षि व्यास और वाल्मीकि के बाद कालिदास ही एक ऐसे महाकवि हैं, जिनकी रचनाओं में संस्कृति के तत्त्व अधिक निहित हैं।

कालिदास ने अपने जन्मस्थान तथा जन्मकाल के सम्बन्ध में कहीं पर कुछ नहीं लिखा। बात यह है, कि कवि देश और काल की सीमाओं से परे होता है, ऐसी स्थिति में आज जब ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर कालिदास के जन्मस्थान तथा जन्मकाल पर विचार किया जाता है तो विभिन्न मतों का होना स्वाभाविक है। इनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में दो मत हैं। कुछ लोग काश्मीर को उनका जन्मस्थान कहते हैं तो कुछ लोग उज्जयिनी को। हमें ऐसा लगता है कि वे पैदा तो हुए काश्मीर में, परन्तु रहे मालव गणाधिपति वीर विक्रमादित्य के दरबार में। विक्रमादित्य के नवरत्नों में उनका प्रमुख स्थान था। अतः दोनों से उनका साक्षात् सम्बन्ध था। यही कारण है कि दोनों स्थानों के सरस वर्णन उनकी रचनाओं में मिलते हैं।

महाकवि के जन्मकाल के सम्बन्ध में भी अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ लोग 'मालविकाग्निमित्र' के आधार पर शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र के अनन्तर अर्थात् ईसा पूर्व द्वितीय शतक को उनका समय निर्धारित करते हैं, तो अन्य लोग विक्रम

संवत् प्रतिष्ठापक मालवगण के प्रमुख वीर विक्रमादित्य के नवरत्नों में उनकी गणना के आधार पर विक्रम संवत् के प्रारम्भ में इनकी स्थिति बतलाते हैं। उनकी रचनाओं में गुप्त राजाओं के 'स्वर्णयुग' के वर्णन की ध्वनि के आधार पर उनको गुप्तकालीन बतलाया गया है। अधिकतर लोग इसी अन्तिम मत के पक्ष में हैं, अर्थात् वे गुप्तकाल में पैदा हुए थे।

एक किंवदन्ती के अनुसार कालिदास बचपन में महामूर्ख थे, पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। एक राजा के घर विद्योत्तमा या विद्यावती नाम की एक राजकुमारी थी, जो बड़ी विदुषी थी। उसकी यह शर्त थी कि उसे जो शास्त्रार्थ में हरा देगा, उसी के साथ उसका विवाह होगा। अनेक पण्डित आये, पर कोई उसे परास्त नहीं कर सका। अन्त में सभी पण्डितों ने यह तय किया कि इसका विवाह किसी महामूर्ख से करा दिया जाय, जिससे यह जन्म भर रोवे। पता लगाने पर जंगल में एक व्यक्ति ऐसा मिला, जो जिस डाली पर बैठा था उसी को काट रहा था। उसको महामूर्ख समझकर पण्डितों ने उसके साथ विद्यावती का विवाह करा दिया। पण्डितों की चालाकी से विद्यावती को यह भान न हो सका कि वह मूर्ख है। जब वह रात को उसके साथ राजभवन में सोयी तो उसकी मूर्खता का पूर्ण ज्ञान हो सका। पण्डितों को कोसते हुए राजकुमारी ने उस मूर्ख को घर से निकाल दिया। मूर्ख भी पहले तो कुछ लज्जित हुआ, पर जब उसे कुछ समझ आयी तो उसने 'महाकाली' की उपासना करने का निश्चय किया। देवी की अनुकम्पा से उसे सिद्धि मिली। वह महाकवि बन गया। तुरन्त अपनी स्त्री के पास आया और स्त्री से किवाड़ खोलने के लिए कहा—"अनावृतकपाटं द्वारं देहि", अर्थात् किवाड़ खोलो और अन्दर आने दो। स्त्री ने कहा —"अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः ?" क्या कुछ विशेष बात है ? बस क्या था। काली के दास इस महाकवि ने स्त्री के एक-एक पद को लेकर एक-एक काव्य बना डाला। 'अस्ति' को लेकर "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः' से कुमारसम्भव, 'कश्चित्' को लेकर "कश्चित् कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः' से मेघदूत तथा 'वाग्' को लेकर 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' से रघुवंश—आदि इन तीनों काव्यों की रचना की, ये इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

महाकवि कालिदास द्वारा लिखित उक्त काव्यों के अतिरिक्त तीन नाटक, एक खण्डकाव्य तथा उनका एक मुक्तक काव्य भी है। नाटकों के नाम हैं—(१) अभिज्ञानशाकुन्तल, (२) विक्रमोर्वशीय तथा (३) मालविकाग्निमित्र। खण्डकाव्य का कानाम मेघदूत तथा मुक्तक काव्य का नाम ऋतुसंहार है। यों तो महाकवि की सारी रचनाएँ अद्‌भुत हैं, पर 'अभिज्ञानशाकुन्तल' विशेष उल्लेखनीय है। कहा भी है—"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला"। मेघदूत अपने ढंग का निराला काव्य है।

महाकवि की कविता की विशेषता यह है कि पद-पद में माधुर्य, प्रसाद, रसपेशलता, अर्थसौष्ठव तथा अलंकार-झंकार मिलती है। आपकी कविता में हृदयपक्ष की प्रधानता है। मानव-हृदय की परिवर्तनशील वृत्तियों को समझकर उन्हें अभिव्यक्त करने में आपको पूर्ण सफलता मिली है। आपकी उपमा प्रसिद्ध है। कहा भी है कि "उपमा कालिदासस्य"। प्रकृति-चित्रण में आपको पूर्ण सफलता मिली है। स्थान-स्थान पर पर्वत, वन तथा नदियों को आपने सजीव किया है। आपके नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें आये हुए पात्र सजीव हैं। भाषा, पात्रानुकूल है। संवाद सरस एवं समयानुकूल हैं। जो बात कहनी है, वह पात्रों के मुख से ध्वनित होती है, कही नहीं जाती। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण आपकी अमर कृति 'शकुन्तला' विश्व-साहित्य में अनुपम नाटक है।

कालिदास के काव्य एवं नाटक भारतीय संस्कृति से पूर्णतः अनुप्राणित हैं। उन्होंने श्रुति-स्मृति को आधार मान कर जिस मानवतामयी संस्कृति का निर्माण किया है, वह हमारे इतिहास की अमर थाती है। उनके साहित्य रूप दर्पण में तत्कालीन समाज की मनोरम झाँकी मिलती है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज-त्याग, तपस्या, सत्य, औदार्य, स्नेह आदि सद्‌गुणों से विभूषित था। कालिदास के काल को वास्तव में भारत का 'स्वर्णकाल' ठीक ही कहा गया है।

卐

गोस्वामी तुलसीदास

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दू जनता की अवस्था बड़ी दयनीय हो गी थी। मुस्लिम शासकों का बोल-बाला था। उनके अत्याचारों से प्रताड़ित हिन्दू जाति अपने भविष्य के प्रति पूर्णतः उदासीन बन चुकी थी। वस्तुतः उस समय हिन्दुओं का जीवन निराशामय था। उनका आँसू पोंछने वाला कोई नहीं था। ऐसे भीषण समय में भारतवर्ष में गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। उन्होंने मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के सगुण तथा लोककल्याणकारी रूप को हिन्दू जनता के सम्मुख रखकर देश का बड़ा भारी उपकार किया। उनके उदय से निराशा के गहरे गर्त्त में पड़े हुए समाज को एक आशा की किरण मिली और सोयी हुई मानवता को उद्बोधन मिला।

यद्यपि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने जन्मकाल एवं जन्मस्थान के सम्बन्ध में कहीं पर कोई संकेत नहीं किया है, पर विभिन्न अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर विद्वानों ने यह निर्णय किया है कि उनका जन्म संवत् १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को बांदा जिले के राजापुर नामक ग्राम में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। इनके जन्म के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

पन्द्रह सौ चौवन विषै कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरचो शरीर॥

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे। अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। इनके बचपन का नाम 'रामबोला' था। बाद में इनके गुरु तुलसीराम ने इनका 'तुलसी' नाम रखा जिसे अपनी दीनता प्रकट करने के लिए इन्होंने 'तुलसीदास' कर लिया।

तुलसीदास के बाल्यकाल की कथा इस प्रकार कही जाती है कि जन्म लेते ही इनके दाँत निकल आये थे, ऐसा लगता था कि वे पाँच वर्ष के बालक हों। जन्म के समय रोये नहीं, बल्कि इनके मुख से 'राम' यह शब्द निकला। पिता ने बालक को राक्षस समझा और उसकी उपेक्षा की। पर माता ने वात्सल्यवश

इसकी रक्षा का भार मुनिया नामक दासी को सौंप दिया। पाँचवे दिन माता का स्वर्गवास हो गया। पाँच वर्ष वाद मुनिया मर गयी। फलतः पिता से उपेक्षित वालक'रामवोला' (तुलसीदास) इधर-उधर भटकने लगे। दो वर्षों तक वालक की यही दशा रही। फिर वावा नरहरिदास ने अपने यहाँ उसे शरण दी। वहाँ पर वालक की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई। वावाजी प्रतिदिन राम-कथा सुनाया करते थे। इन्हीं के साथ वे काशी गए और इनके गुरु स्वामी रामानन्दजी के निवास-स्थान पंचगंगा घाट पर रहने लगे। वहाँ पर महात्मा शेष सनातनजी से इन्होंने वेद,पुराण, दर्शन आदि विविध विद्याओं का अध्ययन किया। १५ वर्षों तक वेद और शास्त्रों का अध्ययन करने के वाद गोस्वामी जी अपनी जन्म-भूमि राजापुर आए। यहाँ उनके परिवार में तव कोई नहीं था। गाँव के लोगों के कहने-सुनने पर वे वहां रहने लगे। वहाँ पर वे लोगों को राम-कथा सुनाया करते थे। कुछ दिनों वाद दीनवन्धु की लड़की रत्नावली से उनका विवाह भी हो गया।

तुलसीदास अपनी पत्नी में इतने आसक्त हो गये कि एक दिन जव वे अपने नैहर चली गयीं, तो उनके पीछे-पीछे वे भी चल दिये। वहाँ पर उनको देख-कर, पत्नी को वड़ा क्रोध आया और उसने इन्हें फटकार सुनाते हुए कहा—

अस्थि चर्ममय देह मम, तामे ऐसी प्रीति।
तैंसी जो श्रीराममँह, होति न तौ भव भीति ॥

यह वात तुलसीदास को ऐसी लगी कि वे तुरन्त काशी आकर वैराग्यमय जीवन विताने लगे। कुछ दिन काशी रहने के वाद वे तीर्थ-यात्रा पर निकले और अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, वदरिकाश्रम, द्वारिका आदि तीर्थों में भ्रमण किया। इस यात्रा में लगभग १९ वर्ष लगे। अन्त में वे चित्रकूट आये। वहीं पर इनसे मिलने के लिए सूरदासजी आये थे। यहीं रहकर इन्होंने गीतावली तथा कृष्णगीतावली की रचना की। पुनः अयोध्या गये और वहीं पर १६३१ में 'राम-चरितमानस' का प्रारम्भ किया गया जो २ वर्ष ७ मास में पूर्ण हुआ। रामायण का कुछ अंश काशी में भी लिखा गया। उक्त तीनों ग्रन्थों के अतिरिक्त ९ ग्रन्थ इन्होंने और लिखे। उनके नाम हैं—दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मङ्गल, जानकी मंगल, वरवै

रामायण तथा वैराग्यसन्दीपनी। संवत् १६८० में श्रावण कृष्ण ३ को इनका स्वर्गवास काशी में अस्सीघाट पर हुआ। इस सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामी तुलसीदासजी की महत्ता का प्रतिपादक उनका साहित्य है। उनका रामचरितमानस आज झोपड़ी से लेकर महलों तक श्रद्धा और आदर के साथ पढ़ा और सुना जाता है। वह केवल इसलिए नहीं कि उसमें भगवान् राम का चरित्र है, अपितु इसलिए भी कि उनकी भाषा, शैली एवं वर्णन-पद्धति अनूठी है। राम-चरितमानस की भाषा जनता की भाषा है। उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। हाँ, भले ही कहीं-कहीं विषय की गम्भीरता के कारण वह साधारण लोगों की समझ के परे हो। भगवान् राम का चरित्र, जितना उज्ज्वल एवं लोक-हितकारक है, ठीक उसके अनुरूप ही कवि ने उसे चित्रित करने की कोशिश की है। उनकी सफलता का ज्वलन्त प्रमाण यही है कि आज रामायण की चौपाइयाँ विद्वानों से ले कर साधारण जनता की जिह्वा पर विराजमान हैं।

गोस्वामीजी की कविता में हृदय के प्रायः सभी भाव चित्रित हुए हैं। इनकी भावुकता की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। राम-कथा के मार्मिक स्थलों का चित्रण जिस वारीकी से इन्होंने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वाहरी दृश्यों के चित्रण में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। इनके समय में जितनी प्रचलित शैलियाँ थीं सबमें इन्होंने रचना की है। अलंकार-विधान भी इनका अनूठा है। तत्कालीन काव्य-भाषा अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों पर इनका पूर्ण अधिकार था। इस तरह एक सफल कवि की जो विशेषतायें होनी चाहिए वे सभी इनमें विद्यमान थीं।

कविवर तुलसीदास की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने तत्कालीन समाज की गतिविधि को पहचाना और उसके अनुकूल रामचरितमानस महाकाव्य का प्रणयन किया। 'मानस' आदर्श चरित्रों की खान है। इसमें पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, राजा-प्रजा, सेवक-स्वामी, शत्रु-मित्र सबका आदर्श सम्बन्ध दिखलाया गया है तथा उनके कर्त्तव्यों की विवेचना की गयी है।

गोस्वामीजी कवि के अतिरिक्त एक सच्चे भक्त भी थे। यही कारण है कि इनकी कविता भक्ति-रस से अनुप्राणित है। ये राम के भक्त थे, किन्तु शिव से द्रोह नहीं करते थे। "शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा।' इस चौपाई से इनकी उदारता एवं सुधार भावना प्रकट होती है। विनय-पत्रिका में इन्होंने गणेश, शिव, हनुमान, सूर्य, देवी, भैरव आदि सभी देवताओं की वन्दना करके अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है।

आज महात्मा तुलसीदास नहीं है, पर अपनी कृतियों से वे अमर है। उनके महामन्त्र 'राम' के ही सहारे महात्मा गांधी ने भारत को स्वतन्त्र कराया। उनकी 'रामराज्य' की कल्पना रामचरितमानस में वर्णित आदर्श समाज की कल्पना है। भगवान् उस कल्पना को शीघ्र साकार करें।

卐

विद्यार्थी जीवन

भारत में मानव-जीवन को चार भागों में बाँटा गया है। सम्पूर्ण जीवन को १०० वर्षों का मानकर एक भाग के लिए २५ वर्षों का काल निर्धारित किया गया है। अर्थात् पहला भाग २५ वर्षों तक, दूसरा भाग २६ से लेकर ५० वर्षों तक, तीसरा भाग ५१ से लेकर ७५ वर्षों तक तथा चौथा भाग ७६ से लेकर १०० वर्षों तक माना गया है। इन चारों भागों के नाम क्रमशः ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा सन्यास आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम का ही वर्तमान नाम विद्यार्थी-जीवन है। इस काल में मनुष्य को ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर विद्याध्ययन करना चाहिए। यह वह अवस्था है, जिसमें बालक अपने माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों से दूर रहता है तथा गुरु के समीप रहकर न केवल पुस्तकसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करता है; अपितु विनय, शील, सदाचार आदि मानवोचित सद्गुणों को भी सीखता है। विद्यार्थी-जीवन, आगे आने वाले जीवन को सुव्यवस्थित बनाने में सहायक होता है। जिसका यह जीवन सुन्दर होगा, उसका शेष सारा जीवन उत्तम होगा।

प्राचीन काल में ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में रहकर गुरु की शुश्रूषा करता हुआ वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्रों का अध्ययन करता था। उसे पढ़ने के साथ-साथ अपने भोजन की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी। उसके लिए वह भिक्षाटन करता था। भिक्षा में प्राप्त अन्न श्रद्धापूर्वक गुरु को समर्पित कर पुनः वह उनकी आज्ञा से उसे ग्रहण करता था। गुरु के लिए अन्न, वस्त्र, लकड़ी आदि की व्यवस्था विद्यार्थी-जीवन का मुख्य कर्तव्य था। विद्यार्थी का अधिकांश भाग गुरु-शुश्रूपा में ही वीतता था। आरुणि, उपमन्यु आदि विद्यार्थियों की गुरु-भक्ति प्रसिद्ध है। गुरु जी भी विद्यार्थी को अपने पुत्र के समान जानते-मानते थे। अपने समग्र ज्ञान तथा सारी विद्याओं को वताने में कोई कोर-कसर नहीं रखते थे। फलतः समय के अन्दर ही विद्यार्थी अपेक्षित विद्या की प्राप्ति कर लेता था। विद्याध्ययन की समाप्ति के समय जब वह घर जाने को होता था तो आचार्य उसे उपदेश देते थे, जिसे भावी जीवन का आधार मान कर वह घर आता था। यह 'समावर्तन' संस्कार कहलाता है। चलते समय यथाशक्ति गुरु-दक्षिणा देने की भी प्रथा थी। कौत्स की गुरुदक्षिणा प्रसिद्ध है। आज के विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोह का मूल यही 'समावर्तन संस्कार है।

वर्तमान काल का विद्यार्थी-जीवन पहले की अपेक्षा वहुत विकृत एवं परिवर्तित हो चुका है। पहले की आश्रम-व्यवस्था संप्रति समाप्तप्राय है। पठन-पाठन के विषय भी परिवर्तित हो गए हैं। वेद, वेदाङ्ग की तो वात ही दूर है, संस्कृत भाषा की भी शिक्षा गौण रूप से ही दी जाती है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली से अधिक अनुप्राणित है। यही कारण है कि आज के विद्यार्थी-जीवन का ढाँचा भी पूर्णतः पाश्चात्य ही है। गुरु-शुश्रूपा, जो हमारे यहाँ की वहुत अड़ी वस्तु मानी जाती थी, वह समाप्तप्राय है। फलतः विद्यार्थी-जीवन में गुरुसेवा से प्राप्त, जो वड़ों के प्रति आदर एवं श्रद्धा का उच्च भाव था वह समाप्त हो रहा है। विद्यार्थियों की शारीरिक स्थिति भी ब्रह्मचर्य के अभाव में कमजोर हो गयी है। यही कारण है कि समाज में विद्यार्थी का वह आदर नहीं है। प्राचीन काल में तो राजा-महाराजा भी विद्यार्थी को देख कर मार्ग छोड़ देते थे।

विद्यार्थी राष्ट्र का कर्णधार होता है। उसकी शिक्षा-दीक्षा अच्छे गुरुओं की देख-रेख में हो, इसके लिए न केवल उसके माता-पिता या अभिभावक को चिन्ता रहती है, अपितु सरकार को भी चिन्ता रहती है। फलतः सरकार योग्य अध्यापकों की नियुक्ति करती है। समय-समय पर उनको प्रशिक्षित कराने की भी योजना वनाती हैं। शिक्षा में नये-नये प्रयोगों द्वारा सरकार, विद्यार्थी-जीवन को अधिक समुन्नत वनाने की दिशा में पूर्ण सतर्क रहती है। अच्छे विद्यार्थियों को तरह-तरह के पुरस्कार एवं छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। विश्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्वन्तत्रता का प्रमुख श्रेय विद्यार्थी-जीवन को प्राप्त है।

विद्यार्थी का जीवन चिन्ता विहीन होता है। यही कारण है कि इस जीवन में मन, वुद्धि एवं शरीर सभी स्वस्थ रहते हैं और शनैः शनैः विकसित होकर शेष जीवन को सुखी एवं सुव्यवस्थित वनाते हैं। स्वछन्द एवं उन्मुक्त वातावरण में रहकर विद्यार्थी को जो एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह अनुभवगम्य है।

इस काल में अच्छी या वुरी जो भी आदत पड़ जाती है वह छूटती नहीं है। अतः अभिभावकों या गुरुओं का यह वड़ा भारी दायित्व है कि विद्यार्थी को अच्छी आदतों की ओर प्रवृत्त करें। इसके लिये अच्छे वातावरण, अच्छे संग एवं अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन अधिक आवश्यक है।

आजकल का विद्यार्थी, समाज पाश्चात्त्य सभ्यता में रंगा हुआ है। अतः पाश्चात्य अनुकरण की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। यह स्थिति भयावह है। इससे हमारी सभ्यता एवं संस्कृति खतरे में हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम प्राचीन युग की तरह गुरुकुल में रहकर वेद-वेदाङ्गों का ही केवल अध्ययन करें और अन्य सामाजिक शास्त्रों का अध्ययन न करें। युग के साथ तो हमें चलना ही होगा। भारतीय विद्यार्थी को भी अनुरूप विभिन्न आधुनिक शास्त्रों का अध्ययन करना ही होगा, पर साथ ही उसे अपना हृदय भारतीय वनाना होगा, जो गंगा की तरह निर्मल एवं फूल की तरह कोमल हो। भारतीय विद्यार्थी का आदर्श वही होना चाविए, जो अन्य देशों के लिए अनुकरणीय हो।

हमारा आदर्श रहा है—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' आदि। इसे भूलना नहीं चाहिए। इसीमें विद्यार्थी-जीवन की सार्थकता है।

卐

ब्रह्मचर्य

भारतीय मनीषियों ने मानव की उन्नति के लिए अनेक व्रत, नियम एवं तपस्याओं का विधान किया है। ब्रह्मचर्य उन सभी साधनाओं का मूलाधार है। यह ऐसा साधन है, जो आत्म को तो शक्ति प्रदान करता ही है, आत्मा के आधार शरीर को भी स्वस्थ एवं संयत बनाने का शिष्ट कार्य करता है। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इसका अधिक महत्त्व के साथ उल्लेख किया गया है। साथ ही आश्रम धर्म में इसको प्रथम स्थान दिया गया है। विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की महिमा भलीभाँति समझनी चाहिए और उसके नियमों का सम्यक् पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य, विद्या-प्राप्ति की सफल कुंजी हैं। यह वह साधन है जिसके सहारे मानव की सर्वविध उन्नति सहज संभव है। जबसे हमने इस पावन नियम की उपेक्षा करना आरम्भ किया तभी से हमारा पतन होने लगा। आज यदि हम अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं, तो इस नियम को भूलना न होगा और इसपर पूर्ण ध्यान देना होगा।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सम्यक् आचरण। ब्रह्म का अर्थ है वेद और वेद का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान का सम्बन्ध विद्या से है। आचरण का अर्थ नियम-संयम है। इस तरह विद्या तथा ज्ञान की प्राप्ति में जो नियम और संयम अपेक्षित हैं, यही ब्रह्मचर्य को वास्तविक अभिप्राय है। वीर्य-रक्षा इसका प्रधान अंग है। इसी से आज साधारणतया ब्रह्मचर्य का लक्ष्य वीर्य-रक्षा माना जाता है।

वीर्य-रक्षा का कितना महत्त्व है, इसको सही अर्थ में एक ब्रह्मचारी ही समझ सकता है। वीर्य-रक्षा के प्रभाव से ही प्राचीन काल में लोग दीर्घजीवी, नीरोग,

बुद्धिमान् तेजस्वी तथा सत्संकल्प वाले होते थे। वेद में ब्रह्मचर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। यथा—

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' अर्थात् ब्रह्मचर्य व तप से देवता लोग मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। स्मृतियों एवं पुराणों में ब्रह्मचर्य की महिमा के प्रतिपादक अनेक वचन मिलते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

न तपस्तप इत्याहुः ब्रह्मचर्यं महत्तपः।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। ब्रह्मचारी मनुष्य नहीं, देवता है।

पुराणों में ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले ऋषियों, मुनियों, भक्तों और वीरों की अनेक गाथायें मिलती हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चारों ब्रह्मचर्य ही के बल पर आजीवन कुमार की संज्ञा से अभिहित हैं। देवर्षि नारद की महिमा सर्व विदित है। व्यास तनय मुनिवर शुकदेव जी का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी है। वे वालब्रह्मचारी थे। हनुमान्जी ने समुद्र-लघंन जैसा अद्भुत कार्य ब्रह्मचर्य के ही बल पर किया। भीष्मपितामह की वीरता तथा विद्या दोनों के मूल में ब्रह्मचर्य ही तो था। ब्रह्मचर्य के बल पर उन्होंने इच्छामृत्यु प्राप्त की थी।

ऐतिहासिक महापुरुषों में श्रीशंकराचार्य को कौन नहीं जानता जिन्होंने ब्रह्म सूत्र, गीता, उपनिषद् आदि पर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे हैं। जिन्होंने थोड़ी आयु पाकर भी जो इतने अद्भुत कार्य किये, वह ब्रह्मचर्य का ही तो प्रभाव था। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य के ही बल पर अपना नाम अमर कर दिया। स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द ने भी ब्रह्मचर्य की महिमा को अच्छी तरह समझा था। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी वाल ब्रह्मचारी तो नहीं थे, किन्तु लगभग ३५-३६ वर्ष की उम्र में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत आरम्भ कर आजीवन उसका निर्वाह किया था। तभी तो उन्होंने जो चाहा करके छोड़ा, अर्थात् अंग्रेजों की दासता से मातृभूमि को मुक्तकर दिखाया।

महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य के बल पर न केवल अपना गौरव बढ़ाया, अपितु भारतीय संस्कृति के इतिहास में चार चाँद लगा दिये। ब्रह्मचर्य के बिना गम्भीर चिन्तन नहीं हो सकता। हमारे यहाँ के तत्त्वचिन्तकों ने जिस गम्भीरता से तत्त्वचिन्तन किया है, वह ब्रह्मचर्य की ही महिमा है।

ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य की सफल कुञ्जी है। यदि कोई पूर्ण स्वस्थ रहना चाहता है तो उसे सबसे पहले ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। सभी औषधियाँ एक ओर तथा ब्रह्मचर्यरूपी महौषधि एक ओर। आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि ने कहा है—'जरा, मरण और सब प्रकार की व्याधियों को नाश करनेवाला अमृतरूप उपचार ब्रह्मचर्य है। जो शान्ति, सौन्दर्य, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। आत्मा ब्रह्मचर्यमय है और वह मानव-शरीर में ब्रह्मचर्य के बल पर ही रहता है।'

ब्रह्मचारी वीर्य-रक्षा पर जोर देता है। अतः वीर्य क्या पदार्थ है, इसे भी जान लेना चाहिए। हम जो भोजन करते हैं, उससे पहले रस, फिर रक्त, माँस, मज्जा, अस्थि आदि के निर्माण के अनन्तर वीर्य का निर्माण होता है। यह अन्य धातुओं की अपेक्षा अल्प परिमाण में बनता है। भोजन के ४० दिन बाद रक्त की ८० बूँद से १ बूँद वीर्य का निर्माण होता है। अब जरा विचार कीजिए कि ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की रक्षा से हमारा कितना कल्याण हो सकता है और इसके विपरीत उसका नाश करने से कितना पतन हो सकता है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर हमारे यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताने का उपदेश दिया गया है।

खेद है, आज इस आवश्यक नियम की गहरी उपेक्षा की जा रही है। यदि हमें अपना प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त करना है, तो ब्रह्मचर्य को जागरूक करना होगा। विद्यार्थियों को इसे भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए कि जीवनरूपी उपवन को हरा-भरा बनाने के लिए ब्रह्मचर्यरूपी जलधारा की नितान्त आवश्यकता है; अन्यथा जीवन शुष्क एवं निरानन्द ही रहेगा।

卐

व्यायाम

'व्यायाम' शब्द की व्युत्पत्ति है—वि+आ+यम्। अर्थात् विशेष नियम तथा संयमपूर्वक शरीर को स्वस्थ रखने की प्रक्रिया ही व्यायाम है। वह प्रक्रिया बचपन से लेकर वार्धक्य तक भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। प्रत्येक प्राणी का शरीर व्यायाम की अपेक्षा रखता है। व्यायाम के बिना उसका स्वस्थ रहना असम्भव है और स्वास्थ्य के बिना शरीर का अधिक दिन चलना असम्भव है। अतः दीर्घ जीवन की कामना करने वाले व्यक्ति को व्यायाम की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

स्वास्थ्य ही सौन्दर्य है। जिस मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं, वह चाहे लाख कृत्रिम प्रसाधनों से अपना सौन्दर्य बढ़ाना चाहे, नहीं बढ़ा सकता है। यही नहीं, प्रकृति से सुन्दर व्यक्ति भी स्वास्थ्य के अभाव में असुन्दर-सा प्रतीत होता है और ठीक उसके विपरीत असुन्दर व्यक्ति यदि स्वस्थ है, तो सुन्दर लगता है। अतः सुन्दर बनने के लिए भी उत्तम स्वास्थ्य होना अनिवार्य है। उस स्वास्थ्य की कुञ्जी व्यायाम ही है।

ऊपर कहा गया है कि प्रत्येक अवस्था के व्यायाम की प्रक्रिया में भेद होता है। बच्चों का व्यायाम उनका इधर-उधर दौड़ना, चलना, गिरना, हँसना, खेलना आदि है। जिन बच्चों को उक्त क्रियाओं से वंचित रखा जाता है, वे अधिकतर अस्वस्थ ही नजर आते हैं। उक्त क्रियाओं से उनके अङ्गों में स्फुरण होता है और स्फुरण से रक्त-संचार अपनी गति से होता रहता है। इससे उनका शारीरिक गठन ठीक रहता है। वे जो कुछ खाते-पीते हैं, शरीर उसे आसानी से पचा लेता है। फिर वे स्वस्थ क्यों नहीं होंगे ?

आगे चल कर जब वे बच्चे विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं, तब उनके व्यायाम की प्रक्रिया में थोड़ा भेद हो जाता है। स्कूल में खेल-कूद का प्रबन्ध उनके व्यायाम के लिए ही किया जाता है, जो लड़के उसमें भाग नहीं लेते वे ठीक नहीं करते। यहाँ का व्यायाम विशेष परिश्रम की अपेक्षा रखता है। बात यह

है कि विद्यालय तो हर तरह की विद्या की शिक्षा देने वाला है। जहाँ एक ओर वह मानसिक स्तर के विकास के लिये ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देता है वहीं दूसरी ओर शारीरिक विकास के लिये व्यायाम की शिक्षा देना उसका ही कर्तव्य है। किसी-किसी विद्यालय में सामान्य खेल-कूद के अतिरिक्त विशेष आसन, प्राणायाम आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

आगे जब मनुष्य पढ-लिखकर कर्मक्षेत्र में पदार्पण करता है, तो उसका व्यायाम-क्षेत्र भिन्न हो जाता है। यदि वह कृषक है, तो उसे अन्य व्यायाम की आवश्यकता नहीं है। अपनी खेती-बारी का कार्य-सम्पादन ही उसके लिए उचित व्यायाम है। यदि वह व्यापारी है तो उसे व्यायाम पर ध्यान देना होगा। अन्यथा शरीर से हाथ धोना पड़ेगा। पैसा भले ही वह अधिक पैदा कर ले, व्यायाम के अभाव में उसे जीवन का आनन्द स्वप्नवत् हो जायेगा। यदि वह अध्यापक है तो भी व्यायाम की उपेक्षा उसके लिए घातक है। मानसिक व्यायाम तो वह पढ़ने-पढ़ाने में कर लेता है, पर शारीरिक व्यायाम के लिए कुछ खेल-कूद, आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास परमावश्यक है। युवावस्था में कठिन व्यायाम भी किये जा सकते हैं। जैसे, दण्ड-बैठक, कुश्ती, तैरना, दौड़ना आदि। वृद्धावस्था में व्यायाम की प्रक्रिया भिन्न हो जाती है। वृद्ध व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए केवल प्रातः सायं भ्रमण ही उत्तम व्यायाम है। इस तरह अवस्था और व्यवस्था के भेद से व्यायामों में भी भेद हैं।

व्यायाम के लिए उपयुक्त समय प्रातःकाल तथा सायंकाल है। इसके लिये खुली हवा परमावश्यक है। भोजन के बाद व्यायाम हानिकर है। इसी तरह रुग्णावस्था तथा भूख की अवस्था में भी व्यायाम हानिप्रद है। सामर्थ्य से अधिक व्यायाम भी हानिकर है। व्यायाम के बाद मुँह से साँस लेना फेफड़ों के लिए घातक है। व्यायाम के बाद तुरन्त स्नान तथा भोजन भी वर्जित है। व्यायाम के इन सूत्रों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

मानव-जीवन में व्यायाम का विशेष स्थान है। जिस प्रकार रेलगाड़ी के इंजन को चलाने लिये कोयले और पानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को चलाने के लिये व्यायाम रूपी कोयले की नितान्त आवश्यकता है।

व्यायाम से सारा शरीर सुडौल, सुसंगठित एवं दृढ़ बन जाता है। रक्त-संचार ठीक तरह से तथा तीव्र गति से होता रहता है। हृदय की गति में वेग पैदा हो जाता है तथा पाचन-शक्ति ठीक रहती है। पुट्ठे मजबूत हो जाते हैं, सीना चौड़ा हो जाता है, गर्दन मोटी हो जाती है तथा इन्द्रियाँ ठीक तरह से अपना कार्य करती हैं। मन सदा प्रसन्न रहता है और रोग फटकने नहीं पाता।

व्यायाम का प्रभाव शरीर पर तो पड़ता ही है, मन और मस्तिष्क पर भी पड़ता है। व्यायाम द्वारा मन और मस्तिष्क का विकास होता है। व्यायामशील मनुष्य संयमी होता है। संयम से उसका चरित्र निखरता है तथा समाज में वह आदर का पात्र बन जाता है। वह कभी क्रोध नहीं करता। क्षमा, दया, परोपकार आदि गुण अनायास ही उसमें आ जाते हैं और वह मनुष्य मात्र का आदरभाजन बन जाता है।

खेद है, आजकल हमारे देश में व्यायाम पर लोग पूर्णतः ध्यान नहीं देते। व्यायाम के अभाव में न तो वे जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त कर पाते हैं और न देश का सिर ही ऊँचा कर पाते हैं। आये दिन वे विविध रोगों का शिकार होकर अकाल में ही काल कवलित हो जाते हैं। एक समय था, जब हमारे यहाँ हनुमान्, भीष्म, परशुराम, अर्जुन, अभिमन्यु आदि वीरों ने पराक्रम से देश का मस्तक ऊँचा किया। यह उनके ब्रह्मचर्य और व्यायाम का ही प्रभाव था। प्रताप, शिवाजी, पृथ्वीराज आदि वीर राजाओं तथा स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों की व्यायामपरायणता से हमें प्रेरणा लेनी चाहिए। गामा ने भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में मल्लयुद्ध में जो ख्याति प्राप्त की थी, वह व्यायाम की ही महिमा थी। प्रो० राममूर्ति जैसा वीर भारत ने ही पैदा किया, जिसने अपनी वीरता से विश्व को चकित कर दिया। यह व्यायाम की ही साधना का फल है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "व्यायाम करने और गीता पढ़ने इन दो बातों में से यदि तुम्हें एक ही को चुनना हो तो मैं कहूँगा कि व्यायाम चुन लो"। व्यायाम के सम्बन्ध में संस्कृत के एक कवि ने कहा है—

व्यायामपुष्टगात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशो बलम् ।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्माद्व्यायाममाचरेत् ।।

अर्थात् व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है तथा बुद्धि, तेज, यश और बल का विकास होता है । अतः व्यायाम आचरणीय है ।

व्यायाम मनुष्य के लिए अति आवश्यक कर्तव्य है । अवस्थानुसार शरीर का ध्यान रख कर इस कर्तव्य का पालन प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए । आनन्दमय जीवन बिताने का इससे बढ़ कर दूसरा साधन नहीं है । अतः इसकी उपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिए ।

卐

सैनिक शिक्षा

किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए सेना का होना आवश्यक है । सेना राष्ट्र को खतरों से रक्षा करनेवाली एक सुसंगठित शक्ति है । प्राचीनकाल में भी राजा लोग सेना रखते थे । राज्य के सात अंगों में सेना का प्रमुख स्नान है । सेना को शिक्षित होना आवश्यक है । सेना के लिए किताबी शिक्षा उतनी आवश्यक नहीं है, उसकी शिक्षा दूसरे ढंग की होती है । सेना की शिक्षा में अनुशासन, शारीरिक संगठन, शत्रु से प्रतिकार की भावना, देश की रक्षा के लिए मर-मिटने की भावना आदि आवश्यक हैं । इस विषय की शिक्षा को ही सैनिक शिक्षा कहते हैं ।

इधर हमारा देश इस कार्य में अन्य देशों से पीछे रहा है । बात यह हैं कि हमारी संस्कृति अध्यात्मप्रधान रही है । अहिंसा हमारा महामन्त्र रहा है । यहाँ भौतिकता को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है । अतएव हिंसावृत्ति को प्रोत्साहित करनेवाली सैनिक शिक्षा की उपेक्षा, स्वाभाविक है । किन्तु आज अणुबम के युग में केवल शांति का सहारा किसी स्वतन्त्र देश के लिए हितकर नहीं है । आज का मनुष्य, विशेषकर अभारतीय मनुष्य अधिक क्रूर एवं दानव बन गया

है। उसमें दूसरे की सम्पत्ति हड़प लेने की प्रबल भावना काम कर रही है। आये दिन, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को आत्मसात् करने में ही अपना गौरव समझता है। भारत पर चीन का आक्रमण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ऐसी भंयकर परिस्थिति में भला भारत कैसे इस आवश्यक अंग को तिलाञ्जलि दे सकता है!

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात् माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। अतः उसकी रक्षा हर आवश्यक उपाय से करनी चाहिए। यद्यपि हमारा उद्देश्य किसी राष्ट्र पर आक्रमण करना नहीं है, पर आक्रमणकारी से देश की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। इसी रक्षा के लिए सैनिक शक्ति का सङ्गठन करना हमने भी आरम्भ किया है। यह सैनिक शिक्षा हमारे यहाँ पहले भी थी, पर आजकल इसमें विशेष प्रगति है। आज प्रत्येक नागरिक को सैनिक बनने की आवश्यकता है। ताकि वह समय पर रणक्षेत्र में जाकर शत्रु का सामना कर सके। इन्हीं कारणों से विद्यालयों में आज सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है।

विद्यार्थी का जीवन एक कच्चे घड़े के समान होता है। उसे जिस वातावरण में रखकर जैसी शिक्षा दी जायेगी, वह उसी के अनुरूप बन सकेगा। इसलिए भविष्य को दृष्टि में रखकर हमारे राष्ट्रनायकों ने विद्यालयों में सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी है। किताबी-शिक्षा केवल आत्मिक एवं बौद्धिक उन्नति में ही सहायक हो सकती है। सैनिक शिक्षा शारीरिक उन्नति का भी मुख्य साधन है। आज बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को देखकर भी इस शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। सैनिक शिक्षा केवल युद्धस्थल के लिए ही उपादेय नहीं है, किन्तु जीवन के प्रत्येक क्षण में उसकी उपादेयता है। जीवन का नाम ही संघर्ष है। उस जीवनरूपी संघर्ष से जूझने के लिए भी सैनिक शिक्षा की महती आवश्यकता है।

सैनिक शिक्षा में परेड का मुख्य स्थान है। एक साथ हाथ-पैर मिलाकर चलने, घूमने, दौड़ने आदि से सहयोगिता की दृढ़ भावना आती है। आपस में सुसङ्गठित होकर कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस तरह सैनिक शिक्षा से एकता का अमूल्य लाभ अनायास प्राप्त हो जाता है।

सैनिक शिक्षा में आज्ञापालन का सबसे अधिक महत्व है। सेना में नायक की आज्ञा ही प्रमुख होती है। मृत्यु के सामने से भी नायक की आज्ञा के बिना सैनिक पीछे नहीं हट सकता। एक बार नेपोलियन बोनापार्ट के एक सैनिक ने बिना उसकी आज्ञा के शत्रु पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि उसका आक्रमण उचित था, पर नायक की आज्ञा नहीं थी, इसलिए उसे दण्ड दिया गया, साथ ही उसके इस उत्साहपूर्ण कार्य की प्रशंसा भी की गई।

आज हमारे विद्यार्थियों में आडम्बर, विलासिता, आदि दुर्गुणों के आजाने से स्वास्थ्य की कमी दिखाई दे रही है। सैनिक शिक्षा से शारीरिक स्वास्थ्य में भी वृद्धि होती है। स्वास्थ्य सौन्दर्य की कसौटी है। आत्मा का बल भी शरीर के बल पर ही निर्भर है। जिसका शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट है, उसींके पास आत्मबल भी होता है। आत्मबल की जीवन में बड़ी आवश्यकता है। अतः सैनिक शिक्षा प्रत्येक मानव के लिए अत्यावश्यक है।

सैनिकों का एक स्वतन्त्र पहनावा होता है। उसे 'वर्दी' कहते हैं। यह वर्दी शरीर को सुसंगठित एवं चुस्त बनाने में अधिक सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त सैनिक शिक्षा हमारे नैतिक स्तर को भी बढ़ाती है। नैतिक पतन की इस विषम घड़ी में सैनिक शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। विद्यार्थियों में इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि वे ही भारत के भावी कर्णधार हैं।

सारांश यह कि सैनिक शिक्षा मानव-जीवन के लिए अत्यावश्यक है। उसकी आवश्यकता युद्ध के लिए ही नहीं है, अपितु जीवन के प्रतिक्षण के लिए है। बल एवं बुद्धि को विकसित करने के लिए भी सैनिक शिक्षा की महती उपयोगिता है। इसकी सर्वाङ्गीण उपयोगिता को देखते हुए, अन्त में यही कहा जा सकता है कि सैनिक शिक्षा किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए वरदान है।

卐

पुस्तकालय

पुस्तकालय उस स्थान को कहते हैं, जहाँ विविध विषयों की प्रकाशित तथा अप्रकाशित (हस्तलेख) पुस्तकें संगृहीत हों। पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं, जैसे—विद्यालय का पुस्तकालय, ग्राम का पुस्तकालय, शहर का पुस्तकालय तथा निजी पुस्तकालय आदि। पुस्तकालय की उपयोगिता पढ़े-लिखे समाज के लिए ही है। ज्यों-ज्यों देश में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होता जा रहा है, त्यों-त्यों पुस्तकालयों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

अध्ययन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। अध्ययन मुख्यतः दो प्रकार का होता है—१ सामान्य तथा २ विशेष। सामान्य अध्ययन पाठशालाओं में पाठ्यपुस्तकों से किया जाता है तथा विशेष अध्ययन के साधन पुस्तकालय हैं। विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तक को पढ़ कर किसी विषय का सामान्य ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है; विस्तृत ज्ञान के लिए उसे या तो गुरुओं की शरण लेनी पड़ेगी या पुस्तकालय की। गुरु भी उसे पुस्तकालयों की सहायता से ही विस्तृत ज्ञान कराने में समर्थ हो सकते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक पाठशाला में एक पुस्तकालय रखा जाता है। पुस्तकालय में एक स्थान होता है, जहाँ बैठकर पाठक पुस्तकें तथा सामाजिक पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं, उसे 'वाचनालय' कहा जाता है। वाचनालय पुस्तकालय का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

पुस्तकालय अवकाश के समय के सदुपयोग के लिए भी उचित साधन है। अवकाश के समय हम गन्दे वातावरण से बच सकें, इसके लिए पुस्तकालय बहुत बड़ा आधार है। वहाँ बैठकर हम अपने मस्तिक को विकसित करने के लिए अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाएँ पढ़कर लाभान्वित हो सकते हैं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, सूर, तुलसी, बिहारी, प्रसाद आदि संस्कृत तथा हिन्दी के कवियों की कविताएँ तथा उन पर लिखित समालोचनायें पढ़कर हम अपने ज्ञान का वर्द्धन कर सकते हैं। एक साथ, एक विषय पर अनेक पुस्तकें पुस्तकालय में ही सुलभ हो सकती हैं। इन साहित्यिक एवं समालोचनात्म पुस्तकों के अतिरिक्त बड़े-बड़े महात्माओं, समाजसुधारकों एवं विद्वानों के चरित्रों को भी

पढ़कर हम अपना मार्ग भी प्रशस्त कर सकते हैं और विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामयिक समस्याओं से पूर्ण परिचित हो सकते हैं। वाचनालय में बैठकर हम पुस्तकालय की पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं से आवश्यक बातों को अपनी नोटबुक में नोट कर सकते हैं। ये सब पुस्तकालय के महत्त्वपूर्ण चमत्कार हैं।

आजकल विद्यालयों में प्रतियोतिाएँ होती हैं—भाषण-प्रतियोगिता, अन्त्याक्षरी-प्रतियोगिता, लेख-प्रतियोगिता, कविता-प्रतियोगिता आदि उनके नाम हैं। इन सभी प्रतियोगिताओं में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए हमें केवल पाठ्य-पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहना होगा, उसके लिए गुरुओं और पुस्तकालयों की शरण लेनी पड़ेगी। वाचनालय में बैठ कर प्रतियोगिता से सम्बद्ध पुस्तकें पढ़नी होंगी और उनमें निहित आवश्यक तथ्यों को एकत्र करना होगा। विविध उद्धरणों से युक्त भाषण या लेख अधिक अङ्क पाने में सहायक होते हैं। तात्पर्य यह है कि अच्छे विद्यार्थी बनने के लिए पुस्तकालय से सहायता लेना अत्यावश्यक है। यही कारण है कि प्रत्येक अच्छे विद्यालय में एक समृद्ध पुस्तकालय रखा जाता है। विद्यार्थियों के अतिरिक्त अध्यापकों के लिए भी ये विद्यालयीय पुस्तकालय बहुत बड़े सहायक होते हैं।

कुछ लोग अपने घर पर भी अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह करते हैं। इसे ही 'निजी पुस्तकालय' कहते हैं। निजी पुस्तकालय अधिकतर प्रोफेसर लोग ही रखते हैं। कुछ पढ़ने के शौकीन धनी-मानी व्यक्ति भी निजी पुस्तकालज रखते हैं। यह संग्रह अधिकतर उनके निजी काम का होता है। इससे सभी लोग लाभान्वित नहीं हो सकते। विदेशों में इसका विशेष प्रचलन है।

गाँवों में भी पुस्तकालय तथा वाचनालय होते हैं जिन्हें 'ग्राम-पुस्तकालय' कहा जाता है। ग्राम-पुस्तकालयों का स्तर साधारण होता है। ज्यो-ज्यों गाँवों में शिक्षा का प्रसार होता जा रहा है, त्यों त्यों पुस्तकालयों की संख्या में विकास होता जा रहा है। वस्तुतः ग्राम-पुस्तकालयों की हमारे देश में अभी बड़ी कमी है। सरकार का ध्यान अब इधर गया है। इनको सरकार पूर्ण सहायता भी देती है। गाँव की भोली-भाली जनता को पुस्तकालय के माध्यम से सामयिक पत्र-पत्रिकाओं

को देखने का सुअवसर मिल जाता है। अवकाश के समय में मनोरञ्जन के लिए कुछ कहानी-उपन्यास आदि पढ़ने को उन्हें आसानी से मिल जाते हैं। इससे उनका मानसिक स्तर भी विकसित होता रहता है। ये पुस्तकालय शिक्षा-प्रचार में भी सहायक होते हैं।

नगरों में तो मुहल्ले-मुहल्ले में पुस्तकालय तथा वाचनालय होते हैं। इसके अलावा विशिष्ट पुस्तकालय भी नगरों में ही होते हैं। इन पुस्तकालयों के खुलने का निश्चित समय होता है। उस समय अधिकांश लोग उससे लाभ उठाते हैं। वहाँ पर पुस्तकों के आदान-प्रदान की भी अच्छी व्यवस्था रहती है। कुछ निश्चित शुल्क जमा करने पर वहाँ से घर ले जाने के लिए भी पुस्तकें मिलती हैं। इन पुस्तकालयों का सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

उपर्युक्त विविध प्रकार के पुस्तकालयों में पुस्तकों के रखने की एक वैज्ञानिक प्रणाली बनायी गयी है। इस प्रणाली को 'पुस्तकालय विज्ञान' कहते हैं। इस प्रणाली का ज्ञान पुस्तकालय के कर्मचारी को अवश्य रखना चाहिए। इसके प्रशिक्षण की व्यवस्था आजकल अनेक विश्वविद्यालयों में है। इस विषय पर अंग्रेजी तथा हिन्दी में बहुत सी पुस्तकें भी लिखी गयी हैं। पुस्तकालय-विज्ञान पर आजकल नये-नये अन्वेषण भी हो रहे हैं।

पुस्तकालय समाज के हित के लिए बनाए जाते हैं। अतः अहितकर पुस्तकों का संग्रह उनमें कदापि नहीं होना चाहिए। खेद है कि आजकल पुस्तकालयों में इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आजकल बाजारों में कुछ निम्न-स्तर की भी पुस्तकें देखने को मिलती हैं, जो सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त हास्यास्पद है। ऐसे मनचले साहित्य का पुस्तकालयों से बहिष्कार ही उचित है। पुस्तकालय हमारे ज्ञानवर्द्धन का महत्त्वपूर्ण साधन हैं, इनमें अज्ञानसूचक पुस्तकें कदापि नहीं होनी चाहियें।

अभी हमारे देश में पुस्तकालयों की बड़ी कमी है। जहाँ हैं भी, उनमें पर्याप्त पुस्तकें नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्र इस दिशा में बहुत पीछे है। सरकार का कर्तव्य है कि कमियों पर ध्यान दे। साथ ही जनता को भी इस पर ध्यान देने की

आवश्यकता है। पुस्तकालयों का जितना विकास होगा, देश की उतनी ही उन्नति होगी; क्योंकि पुस्तकालय ज्ञान के साधन हैं और ज्ञान के विना किसी भी देश का सांस्कृतिक विकास नहीं हो सकता।

卐

समाचार पत्र

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज की गतिविधि से परिचित होना चाहता है। वह प्रत्यक्ष घटनाओं के अतिरिक्त देश-विदेश में घटित होने वाली अप्रत्यक्ष घटनाओं को भी जानने की इच्छा रखता है। इसी मानव-वृत्ति ने समाचार-पत्र को जन्म दिया। इसतरह 'समाचार-पत्र' की परिभाषा हुई 'देश-विदेश की सामाजिक गति-विधियों को प्रकाशित करनेवाला पत्र।'' यह दैनिक, साप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि भेदों में विभक्त है। जो प्रति-दिन प्रकाशित होता है, वह दैनिक पत्र कहलाता है। इसी तरह तीन दिनों पर अर्द्धसाप्ताहिक, सात दिनों पर साप्ताहिक, पन्द्रह दिनों पर पाक्षिक तथा एक मास पर मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं।

समाचार-पत्र का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। सोलहवीं शताब्दी में इटली के 'वेनिस' नगर में इसका प्रादुर्भाव हुआ। अन्य देशों ने इसका अनुक-रण किया। इंगलैण्ड में समाचारपत्र के दर्शन उसके एक शताब्दी बाद अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी में हुए। भारतवर्ष में अंग्रेजों के आने पर समाचार-पत्र निक-लने लगा। सर्वप्रथम १७४० ई० में "इण्डिया गजट" नामक पत्र प्रकाशित हुआ। यह पत्र अंग्रेजी भाषा में था। इसके बाद इस प्रवृत्ति का विकास हुआ। हिन्दी में इसाइयों ने सर्वप्रथम 'समाचार दर्पण' नामक पत्र निकाला। हिन्दी के प्राचीन समाचार-पत्रों में राजा शिवप्रसाद का 'बनारस अखबार' तथा भारतेन्दु की 'कविवचनसुधा' आदि उल्लेखनीय हैं। सन् १८३५ ई० में मुद्रण-यन्त्र की स्वतन्त्रता के फलस्वरूप अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा।

समाज में जो वस्तु अधिक प्रिय होती है, उसका विकास शीघ्र होता है। समाचार-पत्रों की लोकप्रियता इतनी बढ़ती गयी कि थोड़े समय में इसकी

संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो चली। फलतः आज देश-विदेश में सब जगह बहुत से समाचार-पत्र निकल रहे हैं। कोई ऐसी भाषा नहीं जिसमें एक दो समाचार-पत्र न निकलते हों। चारों ओर समाचार-पत्रों की धूम मची हुई है। कुछ दिन पहले भारत में ससाचार-पत्र पढ़ने वालों की संख्या कम थी, इसलिए समाचा-पत्र भी कम निकलते थे, पर अब ऐसी बात नहीं है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ समाचारपत्र-पाठकों की संख्या में भी विकास हुआ है। फलतः भारत भी इस क्षेत्र में अब पीछे नहीं है।

समाचार-पत्रों से समाज को बहुत लाभ है। इनके द्वारा घर बैंठे हमें देश-विदेश के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक एवं व्यावसायिक समाचार एक साथ मिल जाते हैं। ताजे से ताजे समाचार इनके द्वारा हमें मिलते हैं। नौकरियों के विज्ञापन, विवाह सम्बन्धी विज्ञापन तथा व्यवसायसम्बन्धी विज्ञापनों को पढ़कर हम अपने विकास का मार्ग इनके ही द्वारा प्रशस्त करते हैं। विद्यार्थी अपना परीक्षाफल छुट्टियों के दिनों में इन्हीं के माध्यम से कम से कम समय में तथा कम से कम खर्च में घर बैठे जान लेते हैं। यह तो हुआ सामाजिक लाभ। समाचार-पत्रों से व्यक्तिगत लाभ कम नहीं हैं। समाचार-पत्र-प्रकाशन एक अच्छा व्यवसाय है। इससे बहुत से व्यक्ति लाभान्वित होते हैं। प्रत्येक समाचार-पत्र का एक प्रेस होता है। उसका एक सम्पादकमण्डल होता है, बहुत से उसके एजेण्ट होते हैं, जो घर-घर पत्रको पहुँचाते हैं। ये सब लाभान्वित होते ही हैं, इसके अतिरिक्त सबसे अधिक लाभ तो उस व्यक्ति को है, जो इसका संचालक होता है। आज बिरला, टाटा, डालमिया आदि जितने उच्च व्यवसायी हैं सभी समाचार-पत्रों का प्रकाशन करते हैं और उससे विपुल सम्पत्ति पैदा करते हैं।

प्रत्येक समाचार-पत्र में कुछ नियत स्तम्भ होते हैं। जैसे—सम्पादकीय टिप्पणी, अग्रलेख, स्थानीय समाचार, जनपदीय समाचार, व्यापारिक समाचार एवं विविध विज्ञापन आदि। अग्रलेख में विशिष्ट एवं सामयिक समस्या का विवेचनापूर्ण

ससाधान होता है। सम्पादक उसमें अपनी ओर से उचित सलाह भी देता है। यह स्तम्भ पत्र का विशिष्ट अंग है। 'सम्पादकीय टिप्पणी' वाला स्तम्भ सम्पादक का ही होता है। इसमें छोटी, किन्तु महत्त्वपूर्ण समस्याएँ तथा उनका समाधान रहता है। स्थानीय समाचार वाले स्तम्भ में स्थानीय समाचार विस्तृत रूप से दिये जाते हैं। व्यावसायिक स्तम्भ व्यवसासियों के लिए होता है। इसमें सोना, चाँदी; गल्ले आदि के ताजे भाव रहते हैं। विज्ञापन स्तम्भ किसी भी पत्र का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। इसका महत्त्व इसलिए ही नहीं है कि इससे समाज को लाभ होता है, अपितु इसलिए भी है कि यह एक आय का स्रोत होता है। विज्ञापन के माध्यम से पत्रों की आय बढ़ती है। जिस पत्र में जितना अधिक विज्ञापन निकलता है, उसकी उतनी ही आय होती है।

समाचार-पत्र जनता के सन्देशवाहक का भी काम करते हैं। हमारी प्रतिदिन की समस्याओं को सरकार के सामने प्रस्तुत कर उनका उचित समाधान करते हैं। सरकार भी पत्रों द्वारा अपनी बातें जनता तक पहुँचा कर पथ-प्रदर्शन करती है। देश की समस्याओं पर यदि सरकार समुचित ध्यान नहीं देती तो समाचार-पत्र उसकी टीका-टिप्पणी कर उसका ध्यान आकृष्ट करते हैं।

राष्ट्रीय जागृति का एकमात्र साधन समाचार-पत्र हैं। राष्ट्रिय चेतना को उद्बुद्ध करने का पुनीत कार्य इनके ही द्वारा सम्पन्न होता है। देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावों को जगाने में इनका वहुत वड़ा योग होता है। इस प्रकार देश की सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में इसका वहुत वड़ा हाथ होता है।

समाचार-पत्र का जो शाब्दिक अर्थ है, उसी सीमा में रहकर उसे यथार्थ वातों का प्रकाशन करना चाहिए। इसी से उसकी मर्यादा है। खेद है, आजकल कुछ ऐसे समाचार-पत्र भी निकलने लगे हैं, जो अयथार्थ एवं मनमाने समाचारों का प्रकाशन करने में ही अपना गौरव समझते हैं। किमी भी पत्र का आदर तभी तक होता है, जव तक वह 'वादों' के विवाद में नहीं पड़ता। समाचार-पत्र समाज का दर्पण है, उसे स्वच्छ होना चाहिए। तभी समाज का सही-सही प्रतिविम्ब उसमें आ सकेगा, तभी उसकी प्रतिष्ठा वढ़ेगी और तभी वह सच्चा मार्गदर्शक वन सकेगा। अतः उसे अपनी मर्यादा में ही रहना चाहिए।

卐

विजया दशमी

भारतवर्ष में वैसे तो प्रत्येक मास में एक न पर्व या उत्सव आता ही रहता है, किन्तु प्रचलन की दृष्टि से चार उत्सव अधिक महत्त्व के हैं—१. श्रावणी (रक्षावन्धन), २. विजया-दशमी, ३. दीपावली तथा ४. होली। इनमें 'श्रावणी' का अधिक सम्बन्ध ब्राह्मणवर्ग से, 'विजया दशमी' का अधिक सम्बन्ध क्षत्रिय-वर्ग से, 'दीपावली' का अधिक सम्बन्ध वैश्य वर्ग से तथा 'होली' का अधिक सम्बन्ध शूद्र वर्ग से हैं। अर्थात् वर्णविशेष के लिए उत्सव विशेष बनाये गये हैं। निष्कर्ष यह है कि विजया दशमी क्षत्रियों का उत्सव है।

विजया दशमी आश्विन शुक्ल दशमी को पड़ती है। इस तिथि का ऐतिहासिक महत्त्व है। भगवान् राम ने इसी तिथि को रावण पर चढ़ाई की और विजय पायी थी। तभी से इस तिथि का महत्त्व बढ़ गया और विजय देने वाली होने के कारण इसका नाम विजयादशमी पड़ा। इसका दूसरा नाम 'दशहरा' है। दशहरा का भी तात्पर्य दश शिर वाले रावण के वध से है।

न केवल इस तिथि का ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व है, अपितु वैज्ञानिक एवं सामाजिक महत्त्व भी है। वर्षा ऋतु में प्रायः चारों तरफ की भूमि तृणमय एवं जलमय हो जाती है, जिससे पथ लुप्तप्राय हो जाते हैं, सभी राजा-महाराजा यात्रा स्थगित रखते हैं। अतः तुलसीदास ने लिखा भी है—

'विविध भूमि तृण संकुल समुझि परंहि नहि पन्थ।'

आश्विन शुक्ल दशमी पर्यन्त ये सब उत्पात होते हैं। उस दिन से आकाश स्वच्छ हो जाता है, उपद्रव शान्त हो जाते हैं, रास्ते साफ-सुथरे हो जाते हैं एवं सबमें नई चेतना का उदय हो जाता है। अतः यह समय यात्रा के लिए अतीव उपयोगी एवं विजय-दायक होता है। लिखा भी है—

आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये।
स कालो विजयो नाम सर्वकार्यार्थसाधकः॥

अर्थात् यह समय विजयदायक है। इसी समय विजय चाहने वालों को यात्रा,

करनी चाहिए। यही कारण है कि राम ने इसी काल में यात्रा करके विश्व-विजयी रावण पर विजय प्राप्त की थी।

इस महत्त्वपूर्ण तिथि के सम्बन्ध में एक और कथा प्रचलित है। शुंभ-निशुंभ नामक असुरों से पृथिवी आक्रान्त थी, जगत् भयभीत था। देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवती दुर्गा इसी दिन प्रादुर्भूत हुईं और उन विश्वविजयी असुरों का संहार किया इसीलिए उस दिन दुर्गा जी की पूजा बड़े समारोह के साथ की जाती है।

विजयादशमी के दिन क्षत्रिय लोग विशेष उत्सव मनाते हैं, क्योंकि यह पर्व उन्हीं का है। वे अपने शस्त्रों का पूजन करते हैं। घर-घर दुर्गा-पूजन होता है। नगर-नगर में मेलों का भव्य आयोजन किया जाता है। दूर-दूर के लोग उन मेलों में सम्मिलित होते हैं। आमोद-प्रमोद के वातावरण में सारा समाज दिखायी देता है।

नगर से बाहर एक कृत्रिम लङ्का पुरी बनायी जाती है। वहाँ पर कागज से रावण की एक विशाल मूर्ति बनायी जाती है। राम और लक्ष्मण के वेश में दो बालक सुसज्जित होकर धनुष-बाण लिये हुए रथारूढ़ हो उस मूर्ति के सम्मुख लाये जाते हैं। युद्ध का दृश्य दिखाया जाता है। अन्त में सूर्यास्त के समय रावण का वध दिखाया जाता है। अर्थात् उस कागज की बनी मूर्ति को आग लगा कर जला दिया जाता है और लोग 'रामचन्द्रजी की जय' के नारे लगाते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष यह दृश्य दिखाया जाता है।

यह उत्सव केवल खिलवाड़ के लिए नहीं किया जाता, अपितु इसके पीछे भारतीय वीरता का उच्च आदर्श छिपा हुआ है। भारत भूमि वीरप्रसविणी है। राम जैसे आदर्श वीर को पैदा करने का श्रेय इसी भारत भूमि को है। साथ ही यह भी लक्षित होता है कि प्रबल आसुरी शक्ति का संहार उच्च मानवी शक्ति द्वारा ही सम्भव है। इस तरह यह महोत्सव शिक्षाप्रद एवं भारतीय आदर्शों से ओत-प्रोत है।

卐

दीपावली

विजयादशमी और होली की तरह दीपावली भी भारतीयों का वड़ा प्रिय त्योहार है। प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण अमावास्या को यह उत्सव वड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। जगह-जगह दीपक जलाये जाते हैं, इसी से इसका नाम 'दीपावली' है।

प्रत्येक उत्सव का सम्वन्ध किसी न किसी ऐतिहासिक घटना से होता है। इस उत्सव का सम्वन्ध भगवान् रामचन्द्र के अयोध्या-आगमन से है। इसी दिन भगवान् राम विश्वविजयी शत्रु रावण को मार कर लङ्का से अयोध्या पधारे थे। चौदह वर्ष वनवास के बाद राम का यह अयोध्या-आगमन विशेष आनन्ददायी था। अतः सभी नर-नारियों का उस दिन उत्सव मंनाना स्वाभाविक था। उत्सव में जगह-जगह सफाई करना, दीपक जलाना, मिठाई खाना, आमोद-प्रमोद के सामान जुटाना आदि आवश्यक कार्य हैं। इसी दिन से यह उत्सव प्रचलित हो गया और आज तक मनाया जा रहा है। साथ ही इसका आध्यात्मिक स्वरूप यह है कि अधर्म रूप रावण का नाश कर धर्मरूप राम का जव समागम होता है, तभी मनुष्य का अन्तःकतण प्रकाशित होता है और उस प्रकाश में साधक अपने लक्ष्य-मार्ग को प्राप्त करता है।

दूसरी कथा यह है कि इसी दीपावली के दिन भगवान् विष्णु ने वामनावतार धारण करके राजा वलि द्वारा वन्दी की गयी लक्ष्मी को उन्मुक्त किया था। वह लक्ष्मी हमारे घर में आये, अन्यत्र न जाय, इसी उद्देश्य से इस दिन रात-भर लक्ष्मीपूजन किया जाता है और जागरण किया जाता है। कहते हैं—लक्ष्मी जी निशीथ में धन लेकर यह कहती हुई घर-घर घूमती हैं कि कौन जगा है-उसे धन दूं।

निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी।
तस्मै धनं प्रयच्छामि…………………………॥

यह त्योहार कार्तिक कृष्ण तेरस से कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक पाँच दिन मनाया जाता है। प्रथम दिन 'धनतेरस' कहलाता है। इस दिन बर्तन खरीदना

शुभ माना जाता है। वाजारों में वर्तनों की सजावट देखते ही वनती है। दूसरा दिन 'नरक चतुर्दशी' कहलाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी दिन नरकासुर का वध किया था और इसी दिन भगवान् ने नरसिंह रूप धारण कर प्रह्लाद के पिता का वध किया था। इस दिन घर की सफाई की जाती है और सायंकाल दीपक जलाये जाते हैं। तीसरा दिन लक्ष्मीपूजन का है। यही दिन 'दीपावली' कहलाता है। सायंकाल होते ही घर-घर दीपकों की मालाएँ सजाई जाती हैं। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश नजर आता है।

"जगमग जगमग दीप जल रहे
चारों ओर ज्योति छायी है।
सन्ध्या के आंगन में मानो,
रानी उषा उतर आयी है॥"

स्थान-स्थान पर दीपमालायें वड़े सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं। नगरों में श्वेत, हरे, नीले, पीले, लाल, गुलावी लट्टुओं में विद्युत प्रकाश बड़ा ही आकर्षक होता है। चौथे दिन गोवर्द्धन-पूजा होती है। यह पूजा श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन पर्वत उठाकर व्रज की रक्षा करने के उपलक्ष्य में की जाती है। गाय-वैल भी पूजे जाते हैं। पाँचवाँ दिन 'भैयादूज' या 'यमद्वितीया' कहलाता है। ऐसा विश्वास है कि इस दिन यमुनाजी में स्नान करने से मनुष्य यमयातना से मुक्त हो जाता है। इस दिन स्त्रियाँ अपने-अपने भाइयों को मिष्टान्न खिलाती हैं और उनके मस्तक पर तिलक लगाती हैं। भाई भी वहनों को उपहार देते हैं। इस तरह हमारे लिए दीपावली का पर्व बड़े उत्साह का है। इस दिन लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं और अच्छा-अच्छा भोजन करते हैं।

इस उत्सव के नाम पर एक कुप्रथा चल पड़ी है, जिसका नाम है—द्यूतक्रीड़ा (जुआ खेलना)। इसका कहीं भी विधान नहीं है। द्यूतक्रीड़ा से देश की वड़ी हानि होती है। जुआ खेलना एक ऐसा नशा है कि इससे कितने लोग वर्वाद होते दिखायी देते हैं। इस उत्सव के नाम पर यह कलङ्क है। कहाँ कुवासनाओं एवं कुभावनाओं को दूर करने के लिये 'दीपावली' का आयोजन और कहाँ यह गहरी

कुप्रथा का प्रचलन ! जो हो, इसका निराकरण होना चाहिये । उसकी जगह पर रामायण की कथा एवं हरिकीर्तन आदि का प्रचलन होना चाहिये । इसी से देश का यथार्थ लाभ हो सकता है ।

卐

होलिका

हिन्दूसमाज में पर्वों एवं उत्सवों की विलक्षण परम्परा है । हो भी क्यों न ? ये पर्व समाज को नई चेतना देते हैं, जीवन में नया उल्लास पैदा करते हैं । 'होली' 'होलिका' या 'होलका' का उत्सव भी कुछ ऐसा ही उल्लासमय एवं ऐतिहासिक पर्व है । यहाँ प्रतिवर्ष हम आर्य जन 'होलिका' का दाह करते हैं और उस जलती हुई अग्नि-ज्वाला के बीच से प्रह्लाद के प्रतिनिधिस्वरूप एक वृक्ष को निकाल कर जलाशय में ठण्डा करते हैं । उस वृक्ष की पहले पूजा की जाती है।

यह त्योहार फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा से लेकर चैत्र कृष्ण द्वितीया तक मनाया जाता है । पूर्णिमा को 'होलिका' जलायी जाती है । प्रतिपदा को पड़ी रहती है तथा द्वितीया को उसी की राख से आरम्भ कर अबीर, गुलाल रंग आदि का आदान-प्रदान किया जाता है। कहीं-कहीं होलिकादाह के दूसरे ही दिन उत्सव मनाने की प्रथा है। होली मस्ती का त्योहार है । इस दिन युवक-युवतियाँ,बालक-वृद्ध सभी मस्त होकर आनन्द का अनुभव करते हुए परस्पर मिलते-जुलते हैं । तरह-तरह की रस-भरी उक्तियों एवं गीतों से आकाश गूँज उठता है। झाँझ, मृदङ्ग, ढोल, शहनाई आदि वाद्यों के बोल हृदय को बरबस झकझोर देते हैं । गली-गली, डगर-डगर, नगर-नगर सर्वत्र आनन्द का सागर उमड़ आता है । अपनेपन को भूल कर मानों हम एक हो जाते हैं । यही हमारा आदर्श है और यही होली का संकेत है।

पूर्णिमा को जो 'होलिका' जलाई जाती है उसके प्रसंग में एक पौराणिक आख्यान प्रसिद्ध है । हिरण्यकशिपु दैत्य की बहन का नाम था 'होलिका' । वह भाई की आज्ञा से प्रह्लाद को गोद में लेकर उसे जलाने के लिये अग्नि में बैठी

में जल नहीं सकती थी, ऐसा वरदान था। किन्तु ईश्वर की महिमा विलक्षण है। वह अन्याय को सहन नहीं कर सकता। निर्दोष भक्त प्रह्लाद को जलाने वाली होलिका स्वयं जल कर राख हो गयी और कण-कण में भगवान् को देखने वाला भक्त प्रह्लाद जल नहीं सका। इसी पवित्र पौराणिक घटना की स्मृति में आज भी हम आर्य जन 'होलिका' का दाह करते हैं और उस जलती हुई अग्नि-ज्वाला के बीच से प्रह्लाद के प्रतिनिधिस्वरूप एक वृक्ष को निकाल कर जलाशय में ठण्डा करते हैं। उस वृक्ष की पहले पूजा भी की जाती है।

भविष्यपुराण में एक दूसरा उपाख्यान भी मिलता है, जो इस प्रकार है—माली नाम का एक राक्षस था। उसकी पुत्री का नाम 'ढौढा' था। उसने आराधना से रुद्र को प्रसन्न कर यह वर प्राप्त किया कि वह देवता या मनुष्य किसी से भी न मारी जा सके। निदान वह उन्मत्त (असावधान) बालकों को सताने लगी। विशेष कर ऋतु की सन्धि में उसकी पीड़ा होती थी। उसका नाश शस्त्रास्त्र या मन्त्र-औषधि किसी से नहीं होता था। राजा रघु के राज्य में जब प्रजा उससे अजिज आ गयी तो राजा से निवेदन किया। राजा ने गुरुवर वशिष्ठ से उसके निराकरण का उपाय पूछा। वशिष्ठ ने उसके निराकरण का यह उपाय बताया कि फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन, जब शीत समाप्त होता है और गर्मी प्रारम्भ होती है, तब मनुष्य, विशेष कर बालक, उत्साहपूर्वक हाथों में खड्ग आदि शस्त्रास्त्र लेकर योद्धाओं की तरह विचरण करें। सूखे काष्ठ और उपलों की बहुत बड़ी ढेरी लगायी जाय तथा सायंकाल उसमें अग्नि लगाकर राक्षस-विनाशक मन्त्रों से हवन किया जाय। उस अग्नि की लोग तीन बार प्रदक्षिणा करें तथा 'अडाडा' आदि उच्च स्वर में उच्चारण करें। साथ ही जिसको जो आवे, यथेच्छ भाषण करें। सायंकाल घर में और आंगन में गोबर से चौका लगाना, घर में शिशुओं की रक्षा करना, हास्य रस के गीत गाना और बालकों को गुड़, पक्वान्न, मिष्टान्न आदि खिलाना आदि कर्म उस समय विहित हैं। उस रात बालकों की रक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। राजा रघु ने अपने राज्य में ऐसा कराया और वह उपद्रव शान्त हुआ। तभी से यह प्रथा चल पड़ी। पहली कथा की अपेक्षा बाद की कथा का प्रचलन आज अधिक दिखायी देता है।

ये तो हुई 'होलिका' के सम्बन्ध में पौराणिक गाथाएँ। अव व्यावहारिक पक्ष पर भी थोडा विचार करें। चैत्र से नये वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। पूर्णिमान्त मान से फाल्गुन-पूर्णिमा को वर्ष की समाप्ति हो जाती है तथा चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से नये वर्ष का प्रारम्भ हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह होलिकादाह पुराने वर्ष शवदाह का प्रतीक माना जा सकता है। दूसरे दिन प्रतिपदा को जो प्रेमालाप, परस्पर मिलन, अवीर, गुलाल आदि का आदान-प्रदान होता है, वह इस वात का प्रतीक है कि अव नये वर्ष में हम पुरानी वातों को भूल कर परस्पर सौहार्द से रहें। छोटे-वड़े, धनी-दरिद्र, उच्च-नीच, व्राह्मण-शूद्र, सभी भेद-भाव भुलाकर एकता के सूत्र में वँधने की मानों उस दिन प्रतिज्ञा करते हैं। रंग या अवीर इस वात का प्रतीक है कि वर्षारम्भ की यह लालिमा अन्त तक वनी रहे। अर्थात् हमारा शरीर, मन और हृदय सभी स्वस्थ, प्रसन्न एवं विकसित रहें। इसी दिन से हमारे यहाँ वसन्त ऋतु का आरम्भ माना जाता है। वसन्त कामदेव का मित्र माना गया है। यही कारण है कि उस दिन जड़-चेतन, नर-नारी सभी पर कामदेव की कृपा दिखायी देती है। तभी तो उस दिन सभी लोग प्रेमालाप करने में ही गौरव का अनुभव करते हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से भी वसन्तोत्सव एवं काम-पूजा का विधान प्रतिपदा को ही है। स्वच्छ वेशभूषा में एक साथ वैठकर परस्पर चन्दन, गुलाल, रोरी आदि लगाना तथा आम्रमञ्जरी का आस्वादन करना इस विधान का मुख्य अङ्ग है। होलिका के भस्म का वन्दन करना भी शास्त्रविहित है। मीमांसा-शास्त्र के 'होलिकाधिकरण' में इसकी विस्तृत चर्चा है। अतः होलिकोत्सव शास्त्र-पुराणों से प्रतिपादित एक प्राचीन त्यौहार है। यही कारण है कि भारत के सभी अञ्चलों में यह त्यौहार मनाया जाता है। व्रजमण्डल में इसका विशेष रूप देखने को मिलता है।

हमें इस सांस्कृतिक पर्व की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए और सम्प्रति जो कुरीतियाँ इसमें प्रविष्ट हो गयी हैं, उन्हें दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए।

卐

विज्ञान की महिमा

विज्ञान का शाब्दिक अर्थ है—विशेष ज्ञान। किन्तु आजकल यह शब्द एक विद्याविशेष का वाचक है। विज्ञान वह भौतिक विद्या है, जिसके सहारे किसी भी वस्तु का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सके। अँग्रेजी भाषा में इसे 'साइन्स' कहते हैं। यह विद्या भारत में पहले थी। पर अध्यात्मविद्या के विकास ने इसको बढ़ने नहीं दिया और वह प्रायः लुप्त हो गयी। विदेशियों ने उस विद्या से लाभ उठाया और उसके चमत्कार सामने आये। हमने भी उनके सम्पर्क में आने पर उसके प्रभाव को स्वीकार किया। इस तरह विज्ञान की आज देश-विदेश में सर्वत्र चर्चा है। उसके प्रभाव से आज कोई भी देश अछूता नहीं है। सर्वत्र उसका साम्राज्य छाया हुआ है।

यह वैज्ञानिक आविष्कारों का युग है। जहाँ देखिये वहीं विज्ञान के चमत्कार दिखायी दे रहे हैं। विज्ञान ने आज एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। आज का मानव-जीवन विज्ञान से पूर्णतः प्रभावित है। बाल्यकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त मानों वह विज्ञान की ही गोद में पलता है। प्रकृति उसकी दासी-सी बनी हुई है। अर्थात् उस पर विज्ञान का पूर्ण साम्राज्य है। किसी देश की उन्नति का एकमात्र साधन आज विज्ञान है। आज की सभ्यता और संस्कृति भी विज्ञान की अनुगामिनी बनी हुई है। जो देश वैज्ञानिक प्रगति में जितना ही आगे बढ़ा हुआ है, वह उतना ही सभ्य एवं सुसंस्कृत कहा जाता है। आइए, अब हम उसके कुछ चमत्कारों की चर्चा करें।

मनुष्य एक भौतिक प्राणी है। भौतिक सुख-सुविधाओं की चाह उसका स्वभाव है। उन सुख-सुविधाओं के लिए उसने जो-जो आविष्कार किये हैं, वे सभी वैज्ञानिक आविष्कार हैं। उन आविष्कारों की प्रगति रुकी नहीं है, विकास पर है। तभी तो आज वह मंगल और चन्द्र-लोक में जाने का स्वप्न देख रहा है। वह दिन दूर नहीं, जब वह स्वप्न साकार होकर रहेगा।

आज का मनुष्य जितना सुखी, सम्पन्न एवं समुन्नत बना हुआ है, वह सब

विज्ञान का ही प्रभाव है। विज्ञान के विभिन्न उपकरणों द्वारा वह जो चाहता है, सहज में कर डालता है। यात्रासम्बन्धी उपकरणों को ही लीजिए। पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए पर्याप्त समय, धन और श्रम की अपेक्षा होती थी। आज रेल, मोटर, वायुयान, जलयान आदि वैज्ञानिक साधनों की कृपा से सैकड़ों मील की दूरी कम से कम समय, धन और श्रम में तय की जा सकती है। इतना ही नहीं, 'स्पुतनिक' विमान द्वारा आज का मानव चन्द्र-लोक तक पहुँचने में सफल हो चुका है।

समाचार-सम्बन्धी वैज्ञानिक आविष्कार भी कम चमत्कारी नहीं है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक समाचार भेजने के लिए जिन वैज्ञानिक साधनों की सृष्टि हुई है, उन्हें देखकर बुद्धि चकरा जाती है। एक पतले तार के सहारे समाचार भेज दिये जाते हैं। 'टेलीफोन' सर्वविदित यन्त्र है, जिसके सहारे हम घर बैठे देश-विदेश के किसी भी व्यक्ति से बात कर सकते हैं। इतना ही नहीं, 'बेतार के तार' के सहारे हम दिल्ली में हुए प्रधानमंत्री के भाषण को अपने घर में उसी क्षण सुन सकते हैं। 'रेडियो' की सहायता से हम आज जो घर बैठे देश-विदेश के ताजे समाचार सुनते हैं, यह किसकी महिमा है? विज्ञान की ही तो है!

मुद्रण-यन्त्र का आविष्कार आज हमारे लिए कितना उपयोगी है, बताने की आवश्यकता नहीं। जो पुस्तक पहले हाथ से लिखी जाती थी, वह आज मुद्रण-यंत्र की कृपा से अल्प से अल्प समय में, अधिक संख्या में और सुन्दर से सुन्दर आकार-प्रकार में हमारे सामने आ जाती है। समाचारपत्रों का प्रकाशन इन्हीं मुद्रण यन्त्रों का कार्य है।

मनोरञ्जन के क्षेत्र में विज्ञान ने जो आविष्कार किये हैं, उनकी कहानी तो और भी मनोरञ्जक है। सिनेमा से आज कौन परिचित नहीं है। छोटे-बड़े सभी शहरों में आज सिनेमागृह हैं। छोटे-बड़े सभी उसका आनन्द उठाते हैं। आज के व्यस्त जीवन के लिए सिनेमा रूपी वैज्ञानिक आविष्कार मनोरञ्जन का बड़ा भारी साधन है। इसके देखने से केवल मनोरञ्जन ही नहीं होता, अपितु कुछ जीवनोपयोगी शिक्षा भी मिल जाती है। मनोरञ्जन के क्षेत्र में दूसरा स्थान

'रेडियो' का है। रेडियो से हम घर बैठे संगीत, नाटक, कहानी, समाचार आदि जब चाहें सुन सकते हैं।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसकी देन अविस्मरणीय है। आज कठिन रोगों की सरल और सहज चिकित्सा के लिए अनेक औषधियों का निर्माण किया गया है। 'एक्स-रे' यन्त्र द्वारा शरीर के समस्त भीतरी अवयवों की छानवीन की जा सकती है। चीरफाड़ और आपरेशन सम्बन्धी यन्त्रों के आविष्कार से आज किसी भी अनावश्यक तत्त्व का दूरीकरण (आपरेशन) विना कष्ट के किया जा सकता है। 'इञ्जेक्शन' की महिमा तो सर्वविदित ही है।

विजली का तो आजकल खूव प्रचार एवं प्रसार है। विजली और विजली के पंखे का आनन्द हम सभी नित्य लेते हैं। विजली न केवल प्रकाश का ही साधन है, अपितु अन्य उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में भी उसका उपयोग किया जाता है। विजली से आज अनेक मशीनें चल रही हैं। विजली खेती के लिए भी उपयोगी साधन हो चली है। यही कारण है कि आजकल गाँवों में भी विजली पहुँचायी जा रही है।

युद्ध के भयंकर और प्रलयंकर शस्त्रास्त्रों को भी विज्ञान ने ही जन्म दिया है। पुराणों में हम आग्नेयास्त्र और वायव्यास्त्र की कहानी पढ़ते हैं, पर वह आज प्रत्यक्ष है। अणुवम का आविष्कार आज के युग की विशेषता है। अणुबम द्वारा क्षण में सृष्टि का संहार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मशीन-गन, तोप, जेट विमान का आविष्कार युद्धस्थल के लिए अतीव उपयोगी है। आज के युद्ध पहले की तरह हाथी और घोड़ों के सहारे नहीं होते। आज तो विज्ञान ने ऐसे-ऐसे आविष्कार किये हैं कि प्राचीन साधन फीके पड़ गये हैं।

इस तरह विज्ञान के अनेक चमत्कारपूर्ण आविष्कार आज हमारे लिये वर-दान वने हुए हैं। उनकी उपयोगिता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। रूस और अमेरिका आज वैज्ञानिक प्रगति में अग्रणी हैं। भारत भी जब से स्वतन्त्र हुआ है, तव से वैज्ञानिक क्षेत्र में हाथ वँटा रहा है। वह दिन दूर नहीं, जव भारत भी रूस और अमेरिका की पंक्ति में बैठ सकेगा। विज्ञान का भविष्य उज्ज्वल है।

卐

भारतीय नारी

जीवन रूपी रथ के दो चक्र हैं—एक स्त्री, दूसरा पुरुष। अतः दोनों का समान महत्त्व है। हमारे यहाँ स्त्रियों को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है। स्त्री के विना पुरुष कोई भी धार्मिक कार्य करने का अधिकारी नहीं है। नारी ही हमारी जननी है। श्रद्धा, दया, क्षमा, करुणा आदि कोमल भावनओं की प्रत्यक्ष मूर्ति नारी है। कहा भी है कि—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो।"

प्राचीन काल में स्त्रियों का समाज में वड़ा ऊँचा स्थान था। वे शिक्षित होती थीं। मैत्रेयी, गार्गी, अपाला, घोषा आदि नारियाँ वेदमन्त्रों का पूर्ण ज्ञान रखती थीं। मनुस्मृति में लिखा है कि जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है।"

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

मध्ययुग में भी स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। बौद्ध-युग में अनेक स्त्रियाँ भिक्षुणी थीं। यवन-काल में नारी की स्थिति में अन्तर आ गया। नारी घरों की चहार-दीवारियों में वन्द रहने लगी। पर्दा-प्रथा, वाल-विवाह, सती-प्रथा आदि अनेक कुप्रथाएँ आरम्भ हो गयीं। फलतः नारी-समाज की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं दीन हो गयी। उनमें अशिक्षा वढ़ने लगी और संकीर्णता घर करने लगी।

आधुनिक काल में आकर नारियों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। आज की नारियाँ विदेशी नारी-आन्दोलन से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता की ओर झुकी हैं। धीरे-धीरे उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा है। उक्त कुप्रथाओं में सुधार होने लगा है। पर्दा-प्रथा प्रायः समाप्त हो गयी है। अव स्त्रियों का धीरे-धीरे सार्वजनिक जीवन में भी प्रवेश होने लगा है। वे पुरुषों के समान चुनावों में मतदान कर रही हैं। साथ ही एम०एल० ए०, मन्त्री, मुख्य मन्त्री, प्रधान मन्त्री आदि पदों पर नियुक्त भी हो रही हैं।

ईश्वर ने स्त्री में पुरुष की अपेक्षा अधिक शक्ति प्रदान की है। मां, पत्नी और गृहलक्ष्मी के रूप में भारत उसे उच्च आसन प्रदान करता रहा है। भारतीय

नारी त्याग, तपस्या और वात्सल्य की शुद्ध मूर्ति है। पत्नी के रूप में नारी का रूप भारत में धार्मिक और आत्मिक माना गया है। भारतीयों के लिये स्त्री केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिये या भोग की वस्तु कभी नहीं रही है। हिन्दू नारी का सम्बन्ध वासना की पृष्ठभूमि से ऊपर उठकर पवित्र धर्मलोक में स्थापित किया गया है।

प्राचीन ऋषियों ने जहाँ स्त्रियों के अनेक गुणों की चर्चा की है, वहाँ इनमें रहने वाले दोषों की ओर भी संकेत किया है। यही कारण है, कि ऋषियों ने उसे बाल्यावस्था में माता-पिता के आश्रय में, प्रौढ़ होने पर पति के साथ तथा वृद्ध होने पर पुत्रों के आश्रय में रहने का आदेश दिया है—

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥"

ऐसा इसलिये किया गया है कि स्त्रियों का स्वभाव चञ्चल हुआ करता है। वे पथ-विचलित न हो सकें। आज की नारी यदि उक्त आर्ष वाक्य की उपेक्षा कर स्वतन्त्र वातावरण में विचरण करना चाहती है तो भयंकर भूल कर रही है।

पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में आज की नारियाँ पुरुषों के समान अधि-कार-लोलुप तथा वासनामयी बन गयी हैं। क्या उन्हें यह नहीं मालूम है कि स्त्री और पुरुष की प्रकृति में मौलिक अन्तर होता है। दोनों के कार्य-क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। एक-दूसरे का स्थान लेकर जीवन को आनन्दमय नहीं बना सकता है। जीवन का आनन्द तभी है, जब दोनों अपनी-अपनी सीमा में रहें। पत्नी पति की अनुगामिनी बनकर रहे और पति उसे गृह की लक्ष्मी की तरह आदर और श्रद्धा से देखे, यही दाम्पत्य-जीवन की मधुरिमा है और यही भारतीय आदर्श है।

आज का भारतीय नारी-समाज उक्त प्राचीन मान्यताओं का पूर्णतः विरोधी दिखायी दे रहा है। आज की नारियाँ पुरुषों के साथ होड़ करना चाहती हैं। विवाह के प्रति भी उनका आदर्श बदलता जा रहा है। आज की नारियाँ विवाह को कोई महत्त्व नहीं देतीं। उस पवित्र एवं दृढ़ बन्धन को बात ही बात में विच्छिन्न करना उनके बाँये हाथ का खेल हो गया है। वे इस सम्बन्ध पर लौकिक

दृष्टि से विचार करती हैं। उनको यह नहीं पता कि हमारे यहाँ विवाह संस्कार का पारलौकिक महत्त्व अधिक है। विवाह का अर्थ वे केवल भोग समझती हैं। क्या भोगों को भोगकर किसी को शान्ति मिल सकती है? भोग अनन्त हैं, उनको भोगने से तृप्ति कदापि नहीं मिल सकती। तृप्ति तो संयम और नियमित जीवन से ही मिल सकती है।

स्त्रियों की शिक्षा के सम्वन्ध में आज वड़ी प्रगति हो रही है। प्राचीन काल में भी स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। गार्गी, मैत्रेयी आदि स्त्रियाँ तो वेद के मन्त्रों का पठन-पाठन करती थीं। कुछ लोग स्त्री-शिक्षा के विरोधी हैं। उनका तर्क यह है कि शिक्षित स्त्रियों में पाश्चात्य सभ्यता की गन्ध अधिक आ जाती है और पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं हो पाता। वात विलकुल ठीक है। स्त्रियों के लिये वर्तमान शिक्षा-प्रणाली नितान्त गर्हित है। उन्हें भारतीय ढंग की शिक्षा में शिक्षित करना चाहिए। अर्थात् स्त्रियों के लिये अँग्रेजी की शिक्षा अधिक न देकर संस्कृत की शिक्षा पर वल देना चाहिए। संस्कृत का अध्ययन करने से उनकी धार्मिक भावना दृढ़ होगी और वे प्राचीन नारी की भाँति गृह-लक्ष्मी वन कर परिवार में प्रेम और सौहार्द का वातावरण उत्पन्न करेंगी। सीता, सावित्री, अनसूया आदि पति-भक्त एवं आदर्श नारियों का जीवन-चरित्र पढ़कर उनके अनुरूप अपना जीवन वना सकेंगी। स्त्रियों के लिए इतनी ही शिक्षा आवश्यक है। उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

हमारी सभ्यता में नारी का पातिव्रत धर्म सव धर्मों से वढ़कर माना गया है। इस विचार में लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों का संमिश्रण है। वर्तमान में शान्ति तथा भविष्य में सुख भी इसी मार्ग से प्राप्त हो सकता है। यद्यपि आज का युग इसका विरोधी है, किन्तु क्या सत्य, दया, करुणा, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का अभाव समाज को सन्मार्ग पर ला सकता है? कदापि नहीं। अतः नारी को अपने प्राचीन आदर्श का स्मरण रख कर पातिव्रत धर्म का निर्वाह करना चाहिए।

हमारी संस्कृति में नारी का आदर्श बड़ा ऊँचा है। वह स्नेह, ममता और प्रेम का प्रतीक है। वह मानव-जीवन का रस है, अमृत है और प्राण है।

卐

भारतीय ग्राम

भारतवर्ष गाँवों का देश है। लगभग ८० प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती हैं। नगरों में रहनेवाले भी अधिकांश लोग गाँव के ही निवासी हैं। नौकरी या व्यापार के सिलसिले में वे नगरों में रहते हैं। वस्तुतः उनका सम्बन्ध गाँवों से ही है। अतः यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि हमारा भारत गाँवों में रहता है। गाँवों का सुधार ही भारत का सुधार है और गाँवों का उत्थान ही भारत का उत्थान है।

प्राचीनकाल में गाँवों की स्थिति आज से वहुत भिन्न थी। प्राचीनकाल के ग्रामवासी वहुत सीधे-सादे, भोले-भाले, ईर्ष्या-द्वेष-विहीन तथा छल-कपट से रहित होते थे। उनका जीवन झंझटों से रहित था। वे परिश्रमी तथा अध्यवसायी होते थे। आलस्य उनके अन्दर तनिक भी नहीं था। विलासिता का वे नाम तक नहीं जानते थे। राजनीति से कोसों दूर रहते थे। भाई-भाई में प्रेम था। यद्यपि वे अशिक्षित थे, फिर भी शिक्षा का अभाव उन्हें खटकता नहीं था। उनका जीवन सादा था। वे भोजन की सामग्री पैदा करते थे। नगर के लोग उन्हीं पर आश्रित थे। प्राचीन शास्त्रों में वर्णित गृहस्थ धर्म के अनुकूल उनका आचरण था। अतिथि-सेवा और गौओं तथा ब्राह्मणों की सेवा उनका सहज धर्म था। साधु-संन्यासी का वे सम्मान करते थे और उन्हें आवश्यक अन्न-वस्त्र देकर सन्तुष्ट करने में अपने को धन्य समझते थे। गृहस्थों के लिये अतिथि-सेवा का वड़ा महत्त्व है। प्राचीन गृहस्थ इस पर अधिक ध्यान देते थें। यज्ञ-यागादि धार्मिक कार्यों में उनकी प्रवृत्ति थी। ईश्वर पर उनकी आस्था थी। यही कारण था कि समय पर पानी बरसता था। ईतिभीति का नाम नहीं था। अन्न की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती थी। सब सुखी थे।

समय ने पलटा खाया। शहरों का चाकचिक्य गाँवों में भी समा गया। राजनीतिक छल-प्रपञ्च गाँववालों को भी नहीं छोड़ सका। विलासिता का बोलबाला हो गया। आपसी संघर्ष में पड़कर गाँववालों का शुद्ध एवं सात्त्विक जीवन दूषित हो गया। ईश्वर के प्रति विश्वास भी अब कम हो गया। यज्ञ-यागादिकों का तो नाम लेना भी पाप हो गया। यही कारण है कि अब उन्हें अनेक दैवी आपदाओं

का भी सामना करना पड़ता है। समय पर पानी नहीं वरसता। आये दिन अकाल, अवर्षण आदि दैवी प्रकोप हो रहे हैं। फलतः गाँवों का जीवन आज पहले की अपेक्षा नीरस तथा शुष्क है। उसको सरस तथा हरा-भरा बनाने के लिए सरकार कटिवद्ध है। आये दिन गाँवों के विकास के लिये अनेक हितकारी योजनाएँ वन रही हैं। वह दिन दूर नहीं जव गाँव पुनः अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेंगे।

गाँवों में सवसे वड़ी कमी शिक्षा की है। इस महत्त्वपूर्ण कमी को दूर करने के लिये भी सरकार पूर्ण प्रयत्न कर रही है। आज कोई गाँव ऐसा नहीं है, जिसमें एक प्रारम्भिक पाठशाला न हो। गाँवों में प्रौढों की शिक्षा के लिये भी रात्रि-पाठशालाएँ खोली गयी हैं। कई गाँवों में पुस्तकालय तथा वाचनालय की भी स्थापना हो गयी है। पुस्तकालय में साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पुस्तकें सरकार की ओर से दी जाती हैं। ग्रामीण स्तर की छोटी-छोटी पुस्तकें उनके पुस्तकालयों में सरकार स्वयं देती है। सरकार द्वारा गाँवों में विविध पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो आदि का भी प्रवन्ध है। किन्तु इस दिशा में अभी वड़ी कमी है। सरकार तो अपना कर्तव्य कर ही रही है, गाँवों के निवासियों का भी कर्त्तव्य है कि सरकारी साधनों का सदुपयोग करें और गाँवों को पूर्ण शिक्षित तथा संस्कृत बनाने में सहयोग दें। उधर सरकार को भी इस कार्य में और अधिक जागरूक होने की आवश्यकता है। सरकारी सहायता का दुरुपयोग न हो, इस पर सरकार की ओर से पूरा नियन्त्रण होना चाहिए।

प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में गाँव-गाँव में संस्कृत शिक्षा का भी पूरा प्रवन्ध था। गाँव-गाँव में संस्कृत पाठशालाएँ थीं। जिसकी इच्छा होती थी, गुरुकुल में जाकर वेद-वेदांग का ज्ञान सहज में प्राप्त कर लेता था। उस समय संस्कृत का पठन-पाठन वहुत विकसित था। संस्कृतज्ञों का समादर था। विद्यार्थी संस्कृत पढ़ने में अपना गौरव समझता था। शिक्षा निःशुल्क थी। गुरु लोग भी त्यागी एवं अध्यापनानुरागी थे। संस्कृत छात्रों का समाज में पूर्ण समादर था। गरीव विद्यार्थी को सहायता देने में धनी-मानी लोग अपना गौरव समझते थे। देश में एक सांस्कृतिक लहर थी। गाँव-गाँव में संस्कृत के पण्डित होते थे। गाँवों का

गांवों का वातावरण पूरा संस्कृतनिष्ठ था। लोगों में धर्म के प्रति पूरी आस्था थी। समाज में एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण था।

आज यद्यपि हमारा देश स्वतन्त्र है और शिक्षा का पूर्ण प्रचार-प्रसार हो रहा है, पर संस्कृत-शिक्षा के प्रति लोगों में उदासीनता सी दीख रही है। गाँवों में पण्डितों का अभाव-सा हो गया है। पाठशालाएँ जो पहले गाँव-गाँव में थीं, अब केवल शहरों में ही दो-चार रह गयी हैं। ग्रामीण जनसमुदाय आज भी इस कमी को महसूस कर रहा है, पर वह क्या कर सकता है ? अतः गाँवों में अन्य प्रकार की शिक्षा के साथ-साथ संस्कृत की शिक्षा का भी पूरा प्रवन्ध होना चाहिए। इसमें भी सरकार की पूरी सहायता अपेक्षित है। वास्तविक रूप में गाँवों का सुधार तभी हो सकता है, जब वहाँ संस्कृत की शिक्षा का भी पूर्ण प्रवन्ध किया जाय। संस्कृत हमारी संस्कृति का मूल स्रोत है। गाँवों में ही हमारा भारत वसता है। अत: गाँवों को संस्कृतमय वनाना आज अत्यावश्यक है।

शारीरिक दृष्टि से भी गाँव आज पीछे हैं। गाँवों में यद्यपि प्राकृतिक साधनों की कमी नहीं है, पर केवल प्रकृति के सहारे ग्रामीणों का स्वास्थ्य समीचीन नहीं हो सकता है। गाँवों में गरीवी का साम्राज्य है। वहुत से ग्रामीणों को भरपेट भोजन और शरीर ढँकने के लिए पर्याप्त वस्त्र भी नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में उनका स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है ? गाँवों की इस गरीवी को दूर करने के लिए आज सरकार पूर्ण सन्नद्ध है। अनेक योजनाएँ वनायी जा रही हैं।

गाँवों में स्वच्छता की भी कमी है। ग्रामीणों को इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए उन्हें अपने निवासस्थान, वस्त्र तथा शरीर की स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिये। सारी वातों के लिए उन्हें सरकार पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। स्वतः भी अपना विकास करने में उन्हें सचेष्ट होने की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद गाँवों की उन्नति में जो प्रगति हुई है और हो रही है, उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि शीघ्र ही हमारे गाँव उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच जायेंगे।

गाँव और नगर दोनों का सम्बन्ध चोली-दामन का है। वह दिन दूर नहीं,

जब गाँवों में भी नागरिकता के दर्शन होंगे। हमें दोनों को समान दृष्टि से देखना होगा। विभेद की भावना मिटानी होगी, तभी हमारे गाँवों का उन्नयन संभव है। जब तक हमारे ग्रामीण और नागरिक परस्पर मिलकर न रहेंगे, तब तक देश का सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान नहीं हो सकता। कहा भी है कि—

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

卐

देशाटन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। एकान्त में रहकर वह आत्म-चिन्तन भले ही कर ले, पर समाज में आये विना उसको सर्वाङ्गीण जानकारी कथमपि सम्भव नहीं है। समाज में आने के लिए उसे घर और गाँव की सीमा का अतिक्रमण करना होगा और देश के कोने-कोने में भ्रमण करना होगा। आवश्यकता पड़ने पर विदेश की भी यात्रा करनी होगी। अन्यथा वह 'कूपमण्डूक' की तरह संकीर्ण मनोवृत्ति का होगा और समाज में उपहास का पात्र वनकर जीवनयापन करेगा। इसीलिए 'देशाटन' पर आज वहुत वल दिया जा रहा है। देशाटन का सीधा अर्थ है—देश-विदेश का अटन अर्थात् भ्रमण। देशाटन जीवन का आवश्यक कर्म है। प्रत्येक मानव को इसका मर्म समझना चाहिए और यथाशक्ति व्यवहार में लाना चाहिए। किसी उर्दू के कवि की, देशाटन की महत्ता पर, क्या ही सुन्दर उक्ति है—

सैर कर दुनियाँ की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
गर जिन्दगानी कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?

देशाटन का मूल कारण मानव की परिवर्तनशील प्रवृत्तियाँ हैं। मनुष्य सर्वदा परिवर्तन—नवीनता—का इच्छुक रहता है। यह उसका स्वभाव है। खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने, लिखने-पढ़ने आदि सभी में वह परिवर्तन चाहता है। इसी में उसे आनन्द मिलता है। उसी परिवर्तनशील-प्रवृत्ति की प्रेरणा से प्रेरित होकर विदेश का भ्रमण भी करना चाहता है। जब वह भ्रमण करता है, तब

नित्य नये-नये देश, वेश भवन, जीव-जन्तु, नर-नारी आदि के दर्शन होते हैं। उससे उसकी ज्ञानवृद्धि होती है और अन्तरात्मा प्रसन्न होती है।

देश-भ्रमण करने वाले व्यक्ति को सबसे पहले इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह जिस भू-भाग का पर्यटन करने जा रहा है, उस स्थान की भाषा से वह परिचित हो। यदि वह उस स्थान की भाषा नहीं जानता है, तो सर्वप्रथम भाषा-ज्ञान के लिए कोशिश करनी चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो पर्यटन में एक ऐसा व्यक्ति साथ में ले ले, जो उस भूभाग की तथा पर्यटक की भाषाओं से पूर्ण परिचित हो। ऐसा करने से उसे प्रत्येक वस्तु को समझने में सहूलियत हो सकेगी। पर्यटक का दिग्दर्शन वही अच्छी तरह कर सकता है, जो उभयभाषाविद् होने के साथ-साथ उस स्थान के दर्शनीय एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों के विषय में पूर्ण जानकारी रखता हो। यदि हो सके तो निर्दिष्ट स्थान का एक मानचित्र भी साथ में रखना चाहिए। साथ ही डायरी रखना नहीं भूलना चाहिए। 'डायरी' की इसलिए आवश्यकता है कि आवश्यक वातों को उसमें अंकित किया जा सके।

देशाटन पर जाने से पूर्व यात्री को अपने पास खाने-पीने, ओढ़ने-बिछाने आदि की सामग्री रख लेनी चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो पर्याप्त रुपये-पैसे ही पास में रख लेने चाहिए। इससे यात्रा निर्विघ्न हो सकेगी। इन सब व्यवस्थाओं के अतिरिक्त गन्तव्य स्थान पर यदि कोई अपना परिचित मित्र, सम्बन्धी आदि रहता हो, तो उसे पत्र द्वारा सूचित कर देना चाहिए। इससे उसकी यात्रा सुगम तथा लाभदायक होगी। देशाटन में मित्रों से बड़ी सहायता मिलती है। अतः पर्यटक को इस पर ध्यान देना चाहिए।

पर्यटक जब किसी देश अथवा ऐतिहासिक स्थान पर जाता है तो सबसे पहले उसे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वहाँ मुख्य-मुख्य दर्शनीय स्थल कौन-कौन हैं। उन स्थानों का सम्यक् निरीक्षण तथा समीक्षण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वहाँ की प्राकृतिक दशा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, राजनीति, समाज आदि का भी परिज्ञान कर उनका पूर्ण विवरण 'डायरी' में अंकित कर लेना चाहिए। क्योंकि देशाटन का वास्तविक उद्देश्य यही है कि उस स्थान का सही-सही ज्ञान लिपिबद्ध किया जाय; अन्यथा समाज का लाभ नहीं हो सकेगा।

पुस्तक पढ़ने से जो ज्ञान होता है, वह अधूरा होता है। साक्षात् दर्शन से जो ज्ञान होता है, वह पूरा होता है। उसको हम कभी भूल नहीं सकते। देशाटन की यह वहुत वड़ी उपयोगिता है।

देशाटन का प्रभाव स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जल-वायु के परिवर्तन से शरीर स्वस्थ एवं मन प्रसन्न रहता है। नई-नई विविध वस्तुओं को देखकर आँखें तृप्त हो जाती हैं। घरेलू चिन्ताओं से अनायास मुक्ति मिल जाती है। विविध प्राकृतिक वस्तुओं के निरीक्षण से हृदय वरवस सहृदय वन जाता है। इस प्रकार देशाटन स्वास्थ्य और आत्म-विकास का उन्मुक्त द्वार है।

देशाटन से मनुष्य का अहंभाव दूर हो जाता है। देश-विदेश के गण्य-मान्य मनीषियों के सम्पर्क में आने पर उसे अपनी योग्यता का सही-सही अनुभव होता है। उसका अहंकार दूर हो जाता है और वह विनयी तथा उदार वन जाता है। साथ ही अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आने पर ज्ञान का भी विकास होता है। साधु, महात्मा, सुधारक और नेताओं के दर्शनों एवं भाषणों से न केवल मन को प्रसन्नता होती है, अपितु सदाचार और नीति-सम्वन्धी वहुत-सी उपयोगी वातों का परिज्ञान भी हो जाता है। इस तरह देश-भ्रमण मनुष्य को व्यावहारिक शिक्षा देने में वहुत वड़ा सहायक है।

वैसे तो देशाटन सवके लिये आवश्यक एवं उपयोगी है, पर साहित्यकार के लिये उसकी अत्यधिक उपादेयता है। वात यह है कि साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रय सम्वन्ध है। साहित्यकार समाज की गतिविधि से पूर्ण परिचित हुए विना सही साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता। अतः उसे समाज की चेतना से अवगत होने के लिए देशाटन करना ही होगा। कविता, कला, नाटक, इतिहास आदि सभी प्रकार की पुस्तकें लिखने में देशाटन से वहुत वड़ी सहायता मिलती है। विश्व के प्रायः सभी अच्छे लेखक और कवि पर्यटक रहे। कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, सूर, तुलसी, भूषण, गालिव, शेली, कीट्स आदि कवियों को अमर वनाने वाला देशाटन ही है। कवियों को सामयिक समाज का चित्रण करना अपने काव्यों में् अत्यावश्यक होता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के सुन्दर

उपादानों का आलङ्कारिक वर्णन भी कवि के लिये आवश्यक है। यह सब साक्षात् दर्शन से ही सम्भव है।

इतिहास-लेखक को देशाटन की कितनी आवश्यकता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। भारतीय इतिहास के निर्माण में मेगस्थनीज, फाहियान, ह्वेनत्सांग आदि विदेशी पर्यटकों के यात्रा-विवरण हमारे लिये आलोक-स्तम्भ हैं। इतना ही नहीं, भारतीय सभ्यता का जो प्रसार आज विदेशों में दीखता है, उसका श्रेय हमारे भारतीय पर्यटकों को ही है। भूगोल और इतिहास का चोली-दामन का सम्बन्ध है। भूगोल-ज्ञान के लिये भी देशाटन अत्यावश्यक है। इसी तरह विज्ञान की प्रगति का निरीक्षण करना भी देशाटन से ही सम्भव है।

धार्मिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से भी देशाटन का महत्त्व कम नहीं है। भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। यहाँ अनेक धार्मिक तीर्थ-स्थान हैं। तीर्थ-यात्रा से ऐहिक और पारलौकिक उभयविध लाभ होते हैं। विविध देवताओं के दर्शन एवं पवित्र नदियों के स्नान से मनुष्य के सर्वविध पापों का शमन अनायास हो जाता है। शैक्षणिक दृष्टि से भी इन स्थानों के दर्शन का बहुत बड़ा महत्त्व है। धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक बहुत-सी बातों की जानकारी अनायास हो जाती है। यही कारण है कि आजकल विश्वविद्यालयों से शिक्षार्थियों का दल प्रतिवर्ष देश-विदेश की यात्रा कर विविध विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है।

प्राचीन भारत में अध्यात्म-चिन्तन अधिक होता था। अतः उसके लिये ऐकान्तिक साधना की आवश्यकता थी। लोग पर्यटन पसन्द नहीं करते थे। उस पर धार्मिक प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये थे। बात यह थी कि उस समय यातायात के साधनों की बड़ी कमी थी। अधिकतर पैदल ही चलना पड़ता था। रास्ते में चोर-डाकुओं का भी भय बना रहता था। समय अधिक ल ग जाता था। इन्हीं कारणों से पहले के लोग पर्यटन में अधिक अभिरुचि नहीं रखते थे।

आज स्थिति भिन्न है। यातायात के साधन सुलभ हैं। चोर-डाकुओं का भय नहीं है। अतः देशाटन में लोगों की अभिरुचि बढ़ती जा रही है। एक देश के

लोग दूसरे देश में आज आसानी से आते-जाते हैं। कोई प्रतिवन्ध नहीं है। इससे सवसे वड़ा लाभ यह हो रहा है कि विश्व-वन्धुत्व की भावना वढ़ रही है। इस वैज्ञानिक संघर्ष के युग में देशाटन को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। इससे हमारी आत्मा का विकास होगा तथा परस्पर सौहार्द का पवित्र प्रकाश फैलेगा।

卐

आदर्श विद्यार्थी

विद्यार्थी का जीवन वड़ा कोमल होता है। उसको जैसे वातावरण में रखा जायगा, उसका भावी जीवन उसी ढंग का होगा। विद्यार्थी ही आगे चलकर देश का नागरिक वनता है। उसी पर देश का भविष्य निर्भर करता है। अतः अभिभावकों तथा अध्यापकों का कर्तव्य है कि विद्यार्थी को आदर्श वातावरण में रखकर आदर्श शिक्षा प्रदान करे। यदि उसका जीवन सुधरा हुआ नहीं होगा, तो देश की उन्नति तो दूर रही, समाज को पथभ्रष्ट करने में भी वह सहायक हो सकता है। इसके विपरीत यदि वह सही अर्थ में विद्यार्थी रहेगा, तो उससे परिवार की उन्नति के साथ-साथ देश की उन्नति की भी आशा की जा सकती है।

एक आदर्श विद्यार्थी में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है, इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम विद्यार्थी को अध्ययनशील होना चाहिए। अध्ययन ही सफलता की कुँजी है। अध्ययन का वास्तविक अर्थ है पाठ्यक्रम में निर्धारित ग्रन्थों एवं विषयों का अनुशीलन। आज देखा जाता है कि विद्यार्थी कुछ चुने हुए प्रश्नों को ही रट लेते हैं और परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं। वस्तुतः अध्ययन का अर्थ परीक्षा उत्तीर्ण करना ही नहीं है। परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ-साथ विषय का सम्यक् वोध भी होना चाहिए। विषय-वोध के लिए पाठ्य-ग्रन्थों का गुरुमुख से अध्ययन कर, उस पर मनन और चिन्तन की आवश्यकता होती है। मनन और चिन्तन करने के लिए व्यर्थ के प्रपञ्चों में न पड़कर पाठ्य-विषयों के ही प्रपञ्चों में पड़ना चाहिए। पाठ्य-विषय-सम्वन्धी अन्य आवश्यक

ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता लेनी चाहिए। इससे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त होंगे तथा आगे का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

अध्ययन, परिश्रम और अध्यवसाय की अपेक्षा रखता है। कहा भी है कि– 'विद्या परिश्रमाधीना'। परिश्रम का अर्थ केवल यह नहीं है कि बुद्धि को ताख पर रखकर ग्रन्थों को रटा जाय। विद्या-सम्बन्धी परिश्रम में बुद्धि की भी आवश्यकता होती है। परमात्मा ने बुद्धि सबको दी है। उसका सही-सही उपयोग करना चाहिए। परिश्रमी बनने के लिए स्वास्थ्य पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। बिना उत्तम स्वास्थ्य के परिश्रम नहीं हो सकता। उत्तम स्वास्थ्य के लिए ब्रह्मचर्य की नितान्त आवश्यकता है! साथ ही आवश्यक व्यायाम पर भी ध्यान देना चाहिए। व्यायाम और ब्रह्मचर्य उत्तम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक उपादान हैं। इसके अतिरिक्त भोजन की उत्तमता पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उत्तम भोजन वही है, जो सादा तथा ताजा हो।

आदर्श विद्यार्थी को निम्नलिखित पाँच बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

'काकचेष्टा, बकध्यानः, श्वाननिद्रोऽपि तथैव च।
अल्पाहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पञ्चलक्षणः॥'

अर्थात् विद्यार्थी की चेष्टा कौए की तरह होनी चाहिए। उनका ध्यान बकवत् होना चाहिए। उसकी निद्रा कुत्ते की तरह होनी चाहिए। उसका आहार स्वल्प होना चाहिए। उसे गृह का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। ये पाँच सूत्र आदर्श विद्यार्थी के लिए आदर्श गुण हैं।

विद्यार्थी को सादगी पर विशेष ध्यान देना चाहिये। कहा भी है—

'सादा जीवन उच्च विचार।
ये दोनों उन्नति के द्वार॥'

सादगी का अर्थ केवल यही नहीं है कि वह कपड़ा सादा पहने, किन्तु सादगी का वास्तविक भाव यह है कि उसका प्रत्येक आचरण सादा हो। भोजन, वस्त्र, मनोरंजन सभी में सादगी होनी चाहिये। प्रदर्शन तथा फैशन सादगी के शत्रु हैं। सिनेमा, पान, सिगरेट, नाच-गाना, क्रीम-पाउडर, सूट-बूट आदि के चक्कर

में कभी नहीं पड़ना चाहिये। इससे न केवल पढ़ाई में बाधा पहुँचती है, अपितु माता-पिता की गाढ़ी कमाई भी पानी में मिल जाती है। भावी जीवन अन्धकार-मय बन जाता है। इन कुटेवों में पड़ने पर विलासिता बढ़ जाती है और पढ़ाई-लिखाई सब चौपट हो जाती है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने में भी शंका रहती है। अतः इन बुरी आदतों को आदर्श विद्यार्थी अपने पास कभी न फटकने दे, यही उसकी बड़ी विशेषता है। इससे वह अन्य विद्यार्थियों के लिये मार्गदर्शक बन सकेगा।

आदर्श विद्यार्थी बनने के लिये विनय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विनय विद्या का द्योतक है। जो जितना बड़ा विद्वान् होता है, वह उतना ही विनय-शील होता है। कहा भी है—

'विद्या ददाति विनयम्'

विद्यार्थी तो अभी विद्या का अर्थी है। वह विद्वान् भी नहीं है। उसमें तो अहंभाव कभी आना ही नहीं चाहिये। किन्तु इसके विपरीत देखा यह जाता है कि बहुत से विद्यार्थी अपनी विद्या और बुद्धि पर गर्व करते हैं। अन्य विद्यार्थियों को हीन भाव से देखते हैं। यह प्रवृत्ति छात्र-जीवन के लिये अत्यन्त कुत्सित है। इसका सर्वथा त्याग होना चाहिये।

आदर्श विद्यार्थी को गुरुओं के प्रति श्रद्धा का भाव रखना अत्यन्त आवश्यक है। गुरु-कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी विद्यार्थी उन्नति नहीं कर सकता। गुरु-कृपा प्राप्त करने के लिये गुरु-शुश्रूषा आवश्यक है। कहा भी है—

'गुरु-शुश्रूषया विद्या'

अतः अच्छा विद्यार्थी बनने के लिये गुरुओं की आज्ञा का सदैव पालन करना चाहिये। कहा भी है—'गुरोराज्ञा गरीयसी।' अर्थात् गुरु की आज्ञा सबसे बढ़-कर है। ऐसा करने से विद्यार्थी का चारित्रिक विकास तो होगा ही, उसको गुरु-जन अच्छी से अच्छी शिक्षा देने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खेंगे। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बड़ा पवित्र सम्बन्ध है। आजकल इस दिशा में घोर परिवर्तन दिखायी दे रहा है। यही कारण है कि विद्यार्थी-वर्ग पूर्णता को नहीं प्राप्त कर रहा है।

एक समय था, जब विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन करता था और गुरुओं के भोजन, वस्त्र आदि सभी का प्रवन्ध करता था। गुरु का कठिन से कठिन कार्य करने में भी वह हिचकता नहीं था। गुरुकार्य को वड़ी श्रद्धा और भक्ति से शिरोधार्य करता था। आरुणि, उपमन्यु तथा कौत्स का छात्र-जीवन कितना आदर्श था, यह हम सभी जानते हैं। तभी तो उस समय भारत में ज्ञान का दिव्य आलोक घर-घर में फैला हुआ था। आज उसे पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता है। आदर्श विद्यार्थी को इन सब बातों पर विचार कर गुरुओं का अधिक आदर करना चाहिये।

अच्छे विद्यार्थी वनने के लिए समय का सदुपयोग भी परमावश्यक है। जो समय बीत जाता है- वह पुनः नही आ सकता। विद्यार्थी को अपने दैनिक कार्यों की एक समयसारिणी वना लेनी चाहिये। तदनुकूल आचरण से समय का वास्तविक उपयोग हो सकेगा। भोजन, विश्राम, खेल-कूद, मनोरंजन सभी निश्चित समय से करने पर समय का सदुपयोग अनायास हो जायेगा।

अनुशासन विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी गुण है। अनुशासन के विना छात्रजीवन आनन्दमय नहीं हो सकता। अनुशासन का अर्थ केवल यही नहीं है कि हम गुरुओं की आज्ञा के अनुसार चलें। वह तो है ही, इसके अतिरिक्त छात्रों को आपस में मिलकर, प्रेममय वातावरण में रहना चाहिए। उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता एवं गाली-गलौज अनुशासन-हीनता के द्योतक हैं। गुरुओं की निन्दा प्रवल अनुशासनहीनता है। थोड़ी देर के लिये, गुरुजन कुछ गलती भी करें, तो उसका ख्याल कदापि नहीं करना चाहिये। गुरुओं का दोष-दर्शन महापातक माना गया है। आदर्श विद्यार्थी में अनुशासन-सम्बन्धी आवश्यक तत्त्व विहित होने चाहिएँ, अन्यथा उसका सारा आदर्श व्यर्थ है।

उपर्युक्त वातों के अतिरिक्त आदर्श विद्यार्थी वनने के लिए सदाचारपरायणता, परोपकार, सच्चरित्रता, सहृदयता, माता-पिता की भक्ति, परस्पर सौहार्द आदि सद्गुणों का होना परमावश्यक है। इन गुणों से विभूषित विद्यार्थी ही राष्ट्र को उन्नत वनाने में सहायक हो सकता है। खेद है, आज छात्रों में उक्त गुणों की

अपेक्षा दोष ही अधिक आ गये हैं। स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए यह वहुत वड़ा खतरा है। विद्यार्थी भाइयों को विचार करना चाहिए तथा अपना जीवन जहाँ तक हो सके आदर्श वनाना चाहिये।

卐

हमारे राष्ट्रिय पर्व

हमारा देश धर्म-प्रधान है। यहाँ धार्मिक पर्वों एवं उत्सवों की महती परम्परा है। धार्मिक पर्वों एवं उत्सवों में रक्षाबन्धन, विजया दशमी, दीपावली तथा होली मुख्य हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे यहाँ कुछ राष्ट्रिय पर्वों एवं उत्सवों की परम्परा भी चल पड़ी है। राष्ट्रिय पर्वों में भारतीय स्वतन्त्रतादिवस (१५ अगस्त); गणतन्त्र दिवस (२६ जनवरी) तथा गाँधी जयन्ती (२ अक्टूवर) मुख्य हैं। धार्मिक पर्वों की महत्ता अपनी जगह पर है। सच तो यह है कि राष्ट्र, धर्म से वढ़कर होता है। अतः राष्ट्रिय पर्व धार्मिकपर्वों से अधिक महत्त्वशाली हैं। ये पर्व इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ हैं। इनका सामाजिक तथा राष्ट्रिय महत्त्व है। इन पावन पर्वों ने राजनीति को एक नया मोड़ दिया है। हमारी जीवनधारा को इससे एक नई दिशा मिली है। इनका स्मरण भारतीयों का पवित्र कर्तव्य है।

१५ अगस्त १९४७ ई० भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। यह वह दिन था, जव सर्वप्रथम हमने जन्मसिद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त की। यह वह दिन था, जव शताब्दियों के पराधीनता-पाश से भारत उन्मुक्त हुआ। यह वह दिन था, जव हमने शताब्दियों की खोई हुई अपनी अमूल्य निधि प्राप्त की। यह वह दिन था, जव देश पर मर मिटने वाले अमर शहीदों को हमने निर्भीक होकर श्रद्धा से स्मरण किया और उनके चरणों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की। यह वह दिन था, जव हमारे राष्ट्रपिता वापू की अहिंसा का प्रयोग सफल हुआ। यह वह दिन था, जव हमारे नेताओं की तपस्या सफल हुई। अतः यह पावन पर्व हमारे लिये गर्व और गौरव का दिन है। यह हमारा सर्वश्रेष्ठ पर्व है।

इस पुनीत पर्व का उत्सव देखने लायक था। इस उत्सव में जनता और

सरकार दोनों का पूर्ण सहयोग था। सबमें नयी चेतना, नयी स्फूर्ति के दर्शन हो रहे थे। सबके हृदय उल्लसित थे। आबालवृद्ध सभी इस उत्सव को मनाने के लिए मानों उछल रहे थे। एक दिन पूर्व से ही इस राष्ट्रिय पर्व के मनाने की तैयारियाँ होने लगीं। स्वतन्त्रता देवी के स्वागतार्थं स्थान-स्थान पर तिरंगी झंडियाँ सजायी गयीं। केले के खम्भों से निर्मित द्वारों पर आम्र-पल्लवों के वन्दनवार बाँधे गये। इन द्वारों के नाम उन राष्ट्रिय नेताओं के नाम पर रखे गये, जिनका स्मरण करते ही भारतीयों का मस्तक श्रद्धा से अवनत हो जाता है। कही 'गाँधी द्वार', कहीं 'जवाहर-द्वार', कहीं 'सुभाष द्वार' और कहीं 'भारत-माता द्वार' आदि द्वारों का निर्माण एक दिन पूर्व ही सम्पन्न हो गया। इन द्वारों की साज-सज्जा निराली थी। घर-घर, नगर-नगर, डगर-डगर तिरंगे झण्डे की अनोखी लहर लहराती हुई दिखायी दे रही थी। देश भर में खूब चहल-पहल थी। रात भर किसी को नींद नही आयी। लाखों-करोड़ों की अमूल्य साड़ियों से फाटकों की सजावट देखने लायक थी। स्वतन्त्रता देवी के स्वागत में सभी वस्तुएँ तुच्छ-सी जान पड़ती थीं।

रात को जब १२ बजे और १५ तारीख का आरम्भ हुआ, उस समय शङ्ख-ध्वनि के तुमुल घोष से गगनमण्डल गूँज उठा। भारतीय विधि से स्वतन्त्रता देवी का आवाहन किया गया। स्थान-स्थान पर 'रामधुन' होने लगी। कहीं रामायण, कहीं गीता के पाठ होने लगे। सारा भारत स्वतन्त्रता देवी के स्वागत में अपने पलक-पाँवड़े बिछाये हुए 'भारत माता की जय' की ध्वनि करता हुआ हाथ जोड़े खड़ा था। उसके स्वागत में तरह-तरह के गीत भी गाये गये। जैसे—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं उसकी वह गुलसिताँ हमारा।

× × ×

शहीदों की मजारों पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।

प्रभात होते ही प्रभात-फेरियाँ होने लगीं। तिरंगे झण्डों से सारा भारत देदीप्यमान हो उठा। "झण्डा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरङ्गा प्यारा"

का उच्च स्वर से गान होने लगा। प्रत्येक सरकारी भवन, प्रत्येक विद्यालय और सार्वजनिक स्थान चक्रचिह्नित तिरंगे झण्डे से सुशोभित हो गये। घर-घर, मुहल्ले-मुहल्ले, गाँव-गाँव में झण्डे फहराये गये। हमारी स्वतन्त्रता के प्रतीक ये झण्डे आकाश में लहरा कर हमें स्वर्गीय आनन्द की ओर इङ्गित कर रहे थे। प्रातःकाल १०॥ वजे झण्डोत्तोलन का कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् वालकों को मिठाइयाँ वाँटी गयी। ये मिठाइयाँ मानों इस वात की प्रतीक थीं कि ये वालक ही भारत के भावी कर्णधार हैं। स्वतन्त्रता का मधुर फल इन्हें ही चखना है। अतः इसकी रक्षा जी-जान से इन्हें करनी चाहिए।

सायंकाल सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया। ये आयोजन भी गाँव-गाँव, नगर-नगर, मुहल्ले-मुहल्ले में किये गए। वक्ताओं ने राष्ट्रिय आन्दोलन का इतिहास वताते हुए स्वतन्त्रता का मूल्यांकन किया। महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र वोस, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि वक्ताओं ने देशसेवकों को प्रशंसा में मार्मिक भाषण दिए और इनके त्याग और तपस्या की चर्चाएँ कीं।

सूर्यास्त होने पर सायंकाल का दृश्य भी देखने लायक था। घर-घर दीपमालाएँ सजायी गयीं। सरकारी भवन दीपों से जगमगा उठे। दूकानदारों ने अपनी दूकानों को पूर्णतः आलोकित कर दिया। दीपों एवं विजली के लट्टूओं की सजावट का ढंग निराला था। कहीं भारत-माता का मन्दिर वनाया गया। कहीं महात्माजी की दांडी-यात्रा का दृश्य दिखाया गया। कहीं स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर में गाँधीजी और नेहरूजी को आराधनारत दिखाया गया। इसके अतिरिक्त रेडियो द्वारा वन्देमातरम्, जनगणमन—आदि राष्ट्रिय गीतों का प्रसारण हो रहा था; जिनको सुनकर कानों को महती तृप्ति होती थी। कितना आकर्षक था वह १५ अगस्त का दिन, कि शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। भारतीय इतिहास में वह एक अभूतपूर्व पर्व था। उसका उत्सव भी उसी शान से मनाया गया।

प्रतिवर्ष इस पावनपर्व की जयन्ती हम धूमधाम से मनाते हैं और अमरशहीदों के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर अपने को धन्य मानते हैं।

दूसरा राष्ट्रिय पर्व गणतन्त्र दिवस है, जो २६ जनवरी सन् १९५० को मनाया गया था। बात यह है कि १५ अगस्त को हम स्वतन्त्र तो हुए सही, पर वह स्वतंत्रता अभी अधूरी थी। वह औपनिवेशिक स्वतंत्रता थी। वास्तविक स्वतन्त्रता २६ जनवरी १९५० को ही मिली, जिस दिन हमने अपने बनाये हुए विधान से अपने देश का शासन-भार पूर्णतः अपने कन्धे पर रखा। इसी दिन हम भीतर-बाहर सभी मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र हुए। सारा उत्तरदायित्व हमारे कन्धे पर आया। अब हम किसीके अधीन नहीं रहे। गणतन्त्र दिवस का भी ऐतिहासिक तथा राजनीतिक महत्त्व है। प्रभुसत्तासम्पन्न गणतन्त्र की घोषणा का यह दिन भी भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। यह पर्व भी अद्वितीय है। प्रतिवर्ष २६ जनवरी को हम गणतन्त्र की प्रतिज्ञाएँ दुहराते हैं और उत्सव मनाते हैं।

तीसरा पर्व गांधी-जयन्ती का है, जो २ अक्टूबर को पड़ता है। भारत को स्वतन्त्रता दिलाकर गणतन्त्र के रूप में परिणत करनेवाले हमारे पूज्य बापू ही थे। वे व्यक्ति नहीं, राष्ट्र थे। जिसके निधन पर सारा राष्ट्र तमतमा उठे, जिसके निधन पर विश्व में खलबली मच जाय, जिसके निधन पर आबालवृद्ध सब रो पड़े, वह क्या साधारण व्यक्तित्व था ? नहीं, वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि नेता था। स्वतन्त्रता-संग्राम में जिसने अपना सारा जीवन अर्पित किया और 'अहिंसा' के बल पर प्रबल शत्रु को परास्त कर देश को आजाद किया, वह बापू क्या मानव था ? नहीं, वह तो साक्षात् ईश्वर का अवतार था। उसकी जयन्ती राम, कृष्ण और बुद्ध की जयन्ती की तरह मनायी जानी चाहिए। इस तिथि का भी राष्ट्रिय महत्त्व है। इस दिन हमें पूज्य बापू के गुणों की चर्चा कर अपना जीवन आदर्श बनाने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। बापू की दी हुई स्वतन्त्रता बापू के बताये हुए पथ पर चलने से ही सुरक्षित रह सकती है। २ अक्टूबर का पावन पर्व हमको यही स्मरण दिलाने के लिए प्रतिवर्ष आता है।

卐

ऋतुराज वसन्त

भारतीय मनीषियों ने समय की गति को, सूक्ष्म विचार करके, अनेक भागों में बाँटा है। जैसे—निमिष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र (दिन-रात), पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष। एक वर्ष में ६ ऋतुएँ होती हैं। उनके नाम हैं—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर। एक ऋतु का काल दो मास माना जाता है। वसन्त के लिये फाल्गुन तथा चैत्र अथवा चैत्र तथा वैशाख मास माने जाते हैं। वसन्त को ऋतुराज इसलिए कहा जाता है कि यह सभी ऋतुओं के आदि में पड़ता है तथा इसकी छटा सभी ऋतुओं से निराली होती है। "ऋतूनां कुसुमाकरः" इस गीतोक्त वाक्य से भी वसन्त का वैशिष्टय द्योतित होता है।

वसन्त का आगमन शिशिर ऋतु के वाद होता है। वसन्त के पहले शिशिर और हेमन्त की भयंकर शीत से प्राणि-समाज शिथिल एवं शुष्क हो गया रहता है। जड़ प्रकृति भी गतिशून्य होकर कोने में दवी-सी रहती है। वसन्त के आते ही जगत् के जड़ तथा चेतन प्राणी सभी हर्ष से नाच उठते हैं। कहीं नर-नारी मस्ती के राग अलापते हैं, कहीं पक्षि-गण कलरव करते हैं। कहीं भौंरों का मधुर गुंजन होता रहता है, कहीं वृक्षों में नये किसलय दिखायी पड़ते हैं, कहीं कुसुमों कीं कलियाँ चटकती हुई नजर आती हैं तथा कहीं आम्रमञ्जरियों से अलंकृत अमराइयों में कोकिल का पञ्चम स्वर सुनायी देता है। सवमें नवचेतना का उदय हो जाता है। सभी मस्त दिखायी देते हैं। यह है ऋतुराज की महिमा।

राजा के आगमन में स्वागत-समारोह की चारों ओर धूम मची हुई है। जहाँ देखिये, वहीं वृक्ष के नए किसलय सजे हुए हैं। लताएँ झूम-झूम ऋतुराज के स्वागत के लिए मानो ललक रहीं हैं। कुसुम-दल रंग-विरङ्गी कलियों की मालाएँ लेकर ऋतुराज के चरणों में मानो अर्पित कर रहा है। शीतल, मन्द तथा सुगन्धित पवन मानो उसका श्रमापनयन कर रहा है। चारणस्वरूप पक्षिगण मानो ऋतुराज का यशोगान कर रहा है। लाल-लाल पलाश-पुष्प ऋतुराज के विश्राम के लिये मानो अपना वितान फैलाये हुए है। निर्मल गगन में अपनी चाँदनी विखेर कर,

चन्द्रमा ने मानो ऋतुराज का दर्शन रात में सबके लिये सुलभ कर दिया है। उसकी आरती के लिये तारें मानो सजे दीप हैं। प्रकृति देवी ऋतुराज की मानो सहचरी है। तभी तो वह आज उसके आगमन में रंग-विरङ्गी साज-सज्जा से सुसज्जित होकर अठखेलियाँ कर रही है। पीत पुष्पों की बेल-बूटियों से विजड़ित उसकी धानी रङ्ग की साड़ी किस सहृदय का मन नहीं मुग्ध कर देती। धन्य है वह ऋतुराज, जिसका स्वागत करता हुआ प्रकृति का कण-कण नजर आ रहा है!

जड़ प्रकृति की जहाँ यह दशा है, वहाँ चेतन प्राणी का क्या हाल है, इसे भी देखिए। प्राणि-जगत् में इन दिनों घोर परिवर्तन दिखायी देता है। जिसको देखिये वही नई उमंग लिये हुए मस्ती की दुनियाँ में विचरण करता हुआ दिखायी देता है। इन्हीं दिनों 'वसन्तपञ्चमी' तथा 'होली' के आनन्ददायक पर्व पड़ते हैं। इन पर्वों पर वाल-वृद्ध तथा वनिता सभी नये-नये रङ्ग-विरंगें वस्त्रों से सुसज्जित होकर एक-दूसरे से गले मिलते हैं। यह मिलन नये वर्ष का मिलन है। यह इस वात का द्योतक है कि पुरानी वातों को भूल कर आगे परस्पर सौहार्द एवं प्रेम से रहेंगे। इस दिन अवीर और गुलाल का आदान-प्रदान मानो इस वात का प्रतीक है कि आगे के दिन इसी तरह उल्लासमय एवं प्रेममय वीतेंगे। होली के दिन छोटे-वड़े, धनी-निर्धन, व्राह्मण-शूद्र सभी मिलते हैं। यह मिलन इस वात का द्योतक है कि प्रकृति में कोई भेद नहीं है। इस तरह वसन्त के दिनों में, प्राणियों में एक अपूर्व उल्लास तथा सौहार्द के दर्शन होते हैं।

वसन्त से कवि लोग भी प्रभावित होते हैं। हों भी क्यों न? कवियों को प्रकृति से वड़ा प्रेम होता है। वह प्रकृति वसन्त में ही खिलती है। कौन ऐसा निरस कवि होगा, जो अपने काव्य में वासन्ती छटा का चित्रण नहीं करेगा! यही कारण है कि कवियों ने इस ऋतु का बड़ा ही मोहक वर्णन प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि सभी संस्कृत के कवि-पुङ्गवों ने इस विषय पर लेखनी उठायी है। हिन्दी काव्य तो वसन्त-वर्णन से भरा पड़ा है। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

संस्कृत—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः
सर्वं प्रिये ! चारुतरं वसन्ते ॥

—कालिदास

नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपाण्डुरम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्
स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः ॥

—माघ

हिन्दी—

गई रही देखन फुलवाई । जहँ वसन्त ऋतु रही लुभाई ।

—तुलसीदास

कूलन में केलिन में कछारन में कुञ्जन में,
क्यारिन में कलित कालीन विकसत हैं ।
कहै पद्माकर परागहू में, पौनहू में,
पातन में पीकन में पलाशन पगंत है ।
द्वार में दिसान दुनी में देस-देसन में
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत हैं ।
वीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
वनन में बागन में बगयो बसंत है ।

—पद्माकर

तात्पर्य यह कि वसन्त की शोभा निराली होती है । इस ऋतु में समता, सरलता तथा सुमनोहरता का अपूर्व सम्मेलन दिखायी देता है । इस समय न अधिक शीत रहती है, न अधिक गर्मी रहती है । प्रकृति अपना सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदर्शित करती है तथा प्राणियों को आनन्द-सागर में आप्लावित कर देती है ।

सब जगह वसन्त की अनुपम छटा का वास्तविक आनन्द वही ले सकता है; जिसका हृदय सरस एवं मन प्रसन्न है।

卐

संस्कृत का महत्त्व

आज संस्कृत विद्या के पठन-पाठन के प्रति लोगों में उदासीनता दिखायी दे रही है। यहाँ तक कि पढ़े-लिखे लोग भी इसी वातावरण से प्रभावित हो गये हैं। इतना ही नहीं, हमारा संस्कृत-समाज भी अपने लड़कों को संस्कृत पढ़ाने में संकोच करता हुआ दिखाई दे रहा है। इन सबों के मूल में एक ही मुख्य कारण दिखायी देता है, वह है—आर्थिक समस्या। आज का युग अर्थ-प्रधान है। सबका लक्ष्य अर्थोपार्जन है। संस्कृत विद्या का लक्ष्य केवल अर्थ नहीं है। इसका लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों है। उसमें धर्म और मोक्ष की प्रधानता है। अर्थ और काम गौण हैं। इस भौतिक युग में उलटी गंगा वह रही है। अर्थ और काम, इन्हीं को प्रधानता दी जा रही है। धर्म और मोक्ष गौण हो गये हैं। अतः संस्कृत विद्या का पठन-पाठन यदि ह्रासोन्मुख है तो यह स्वाभाविक बात है। साथ ही एक बात और है—अंग्रेजों के शासनकाल में संस्कृत भाषा को 'मृतभाषा' की संज्ञा दे दी गयी। फलतः उधर से लोगों की प्रवृत्ति खिच-सी गयी। इतना ही नहीं, एक बात और हुई। वह थी, संस्कृत पठन-पाठन प्रणाली की अवैज्ञानिकता तथा कठिनता। स्वतंत्र भारत में अन्य उन्नति-योजनाओं के साथ-साथ संस्कृत की उन्नति की योजनाएँ भी बनाई गयीं और 'संस्कृत आयोग' तथा 'संस्कृत विश्वविद्यालय' की स्थापना की गयी। संस्कृत शिक्षा में सुधार किये गये। उसे अर्थकारी बनाने के लिये उसके साथ अन्य विषयों का पठन-पाठन भी होने लगा। संस्कृत को सरल ढंग से पढ़ाने की विधियाँ बनायी गयीं। उसके महत्त्व की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया।

अब प्रश्न उठता है कि संस्कृत क्यों पढ़ी जाय? उसका महत्त्व क्या है?

ऊपर संकेत किया जा चुका है कि उसका मूल उद्देश्य धर्म है। अर्थ और काम गौण हैं। धर्म का अर्थ यहाँ संकीर्ण नहीं है, जैसा कि सामान्यतः लोग समझते हैं। धर्म ही मनुष्य का आधार है। उसके विना वह पशुवत् है। 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः'। धर्म का लक्षण मनुस्मृति में इस प्रकार किया गया है—

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥'

अर्थ—धैर्य, क्षमा, दम (मन को वश में रखना), चोरी न करना, शौच (शरीर, मन और वचन की पवित्रता) इन्द्रियों को वश में रखना, विवेक, विद्या, सत्य, अक्रोध—ये धर्म के दश लक्षण हैं।

उक्त धर्म किसी जाति के लिये नहीं है, अपितु मानवमात्र के लिये हितकारी है। संस्कृत शिक्षा से उक्त धर्म की ओर मानव की प्रवृत्ति अनायास हो सकती है; क्योंकि संस्कृत वाङ्मय में सत्य, दया, दम आदि सद्गुणों की चर्चा स्थल-स्थल पर की गयी है। चाहे वह वेद हो, चाहे वह पुराण हो, चाहे वह साहित्य हो, सर्वत्र मानवता के मूल आधार धर्म का वर्णन मिलेगा। निश्चय ही आज इस तत्त्व की कमी हो गई है, जिसका एक मात्र कारण है—संस्कृत के पठन-पाठन की उपेक्षा। अतः इस मौलिक लाभ की दृष्टि से संस्कृत शिक्षा का विकास पूर्ण रूप से होना चाहिए।

संस्कृत हमारी संस्कृति की आधार-शिला है। आज संस्कृति की बड़ी चर्चा है। प्रश्न उठता है—संस्कृति क्या है ? संस्कृति का सीधा अर्थ है, हमारे प्राचीन संस्कार। संस्कार से तात्पर्य यहाँ पर बाह्य संस्कार नहीं है। चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कार भी संस्कार हैं। और वे भी हमारी संस्कृति के ही अंग है, पर संस्कृति उससे भी बढ़कर कोई आत्मिक तत्त्व है। संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से अधिक है। हमारे यहाँ आत्मतत्त्व का चिन्तन अधिक मात्रा में हुआ है। आत्मा से सम्बद्ध विनय, शील, सदाचार आदि सद्गुण भी संस्कृति के उपादान हैं। धर्म और संस्कृति का गहरा सम्बन्ध है। दर्शन संस्कृति का प्राण है। कला संस्कृति का सौन्दर्य है। आचरण तथा रहन-सहन उसका शरीर है। इन सारे

सांस्कृतिक तत्त्वों का सम्यक् परिशीलन हमारे संस्कृत के ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में किया गया है। अतः संस्कृति पर भाषण देने के पूर्व हमें संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

भारतीय इतिहास के आदि स्रोत हमारे वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा काव्य-ग्रन्थ हैं। उनका वास्तविक ज्ञान किये विना क्या हम यह वता सकते हैं कि आर्य कौन थे? वे कहाँ से आये? और उनकी सामाजिक मान्यताएँ क्या थीं? इतना ही नहीं, गुप्तकाल के इतिहास की जानकारी का वास्तविक स्रोत तत्कालीन काव्य, नाटक तथा अभिलेख हैं। वे सभी संस्कृत में ही लिखे गये हैं। उनका मौलिक ज्ञान इतिहास की वास्तविक एवं सही-सही जानकारी के लिये नितान्त वाञ्छनीय है। इसी तरह राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी चाणक्य का अर्थ-शास्त्र, कामन्दकीय नीतिशास्त्र आदि प्राचीन नीति-ग्रन्थों का पर्यालोचन आवश्यक है। कानून की जानकारी के लिये 'मिताक्षरा' का परिज्ञान कितना आवश्यक है, यह वताने की आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह कि व्यवहार की जानकारी भी संस्कृत-ज्ञान के विना अधूरी है।

आजकल साहित्य एवं काव्य का पठन-पाठन वड़े जोरों पर है; किन्तु क्या साहित्य के वास्तविक मर्म का ज्ञान विना संस्कृत के मूल ग्रन्थ के जाने किसी को हो सकता है? क्या विना 'साहित्यदर्पण' और 'काव्यप्रकाश' को पढ़े रस और अलंकार का वास्तविक बोध हो सकता है? क्या कालिदास की उपमा तथा दण्डी का पदलालित्य, विना उनके काव्यों के पढ़े किसी की समझ में आ सकता है? क्या जयदेव का 'गीत-गोविन्द' तथा पण्डितराज की 'गंगालहरी' का काव्य-सौन्दर्य किसी भाषा में मिल सकता है? सारांश यह कि संस्कृत की काव्य-सम्पत्ति वेजोड़ है। उसका रसास्वादन प्रत्येक सहृदय के लिये आवश्यक है। अतः संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान काव्य-रस के आस्वादन के लिये भी अत्यन्त वाञ्छनीय है।

आज नाटकों की वड़ी धूम है। किन्तु क्या यह नहीं मालूम है कि "काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला" अर्थात् काव्यों में नाटक सुन्दर है और नाटकों में शकुन्तला पढ़ने के लिये नाटक-प्रेमी का मन नहीं ललक उठता होगा! क्या

उसकी पूर्ति अनुवाद से हो सकती है। मूल में जो आनन्द है, वह अनुवाद में कदापि नहीं। भवभूति का 'उत्तररामचरित' करुणरसप्रधान नाटक है। उसमें कितनी मार्मिक उक्तियाँ हैं; यह सहृदय संस्कृतज्ञ ही समझ सकता है। तात्पर्य यह कि नाटक, आख्यायिका आदि काव्य-ग्रन्थों का बड़ा विशाल एवं व्यवस्थित प्रणयन संस्कृत साहित्य में हुआ है।

गीता हमारी जीवन-धारा को प्रभावित करने वाली एक अद्वितीय रचना है। गीता में एक साथ दर्शन, राजनीति, धर्म, कर्म, आचार, विचार आदि सभी भारतीय चिन्तन भरे पड़े हैं। उनको जानने का प्रमुख साधन संस्कृत-ज्ञान है। अन्यथा बहुत बड़ी जानकारी से हम वंचित रह सकते हैं और जीवन में तथा जगत् में उपहास के पात्र बन सकते हैं। अध्यात्म-चिन्तन के लिये उपनिषदों का ज्ञान, भक्ति-भावना के लिये भागवत का ज्ञान तथा कर्म का मर्म समझने के लिये मीमांसा का ज्ञान हमारे लिये कितना उपयोगी है, बताने की आवश्यकता नहीं।

इन गहन तथा उच्च कोटि के ग्रन्थों के अतिरिक्त सुभापित-पुस्तकें भी तो संस्कृत में ही हैं, जिनके सहारे हम अपना जीवन नैतिक तथा सरल बना सकते हैं। संस्कृत के 'सुभाषित' भला किसको नहीं आकृष्ट कर लेते हैं। दो-चार सुभाषित द्रष्टव्य हैं—

(१) विद्या ददाति विनयम्।
(२) द्वयमपि परिरक्ष्यं संस्कृतिः संस्कृतञ्च।
(३) विद्या धर्मेण शोभते।
(४) सत्यान्नास्ति परो धर्मः।
(५) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।
(६) परोपकाराय सतां विभूतयः।
(७) सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।

यह तो हुई प्राचीन शास्त्रों एवं काव्य-नाटकों की विशेषता। अब जरा संस्कृत शिक्षा के व्यावहारिक तथा सामयिक लाभ पर विचार करें। आज हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। हिन्दी सबको सीखनी ही पड़ेगी, अन्यथा आर्थिक दृष्टि

से उसे उच्च पद नहीं मिल सकेगा। उस राष्ट्रभाषा हिन्दी के शब्द, जो आज निर्मित हुए हैं और निर्मित हो रहे हैं, वे कहाँ से लिए गये हैं ? उनका आदि स्रोत क्या है ? उस शब्दावली की प्रकृति संस्कृत ही तो है। संस्कृत के ही धातुओं में प्रत्यय तथा उपसर्ग लगाकर उसका निर्माण किया जाता है। ऐसी स्थिति में हिन्दी की जननी संस्कृत की उपेक्षा क्या घातक नहीं हैं ? क्या संस्कृत की जानकारी के विना सही-सही हिन्दी के शब्दों को कोई लिख सकता है ? क्या संस्कृत के प्रकृति-प्रत्यय का ज्ञान उसके लिये आवश्यक नहीं हैं ? इतना ही नहीं वर्तनी (स्पेलिंग) का ज्ञान होना भी संस्कृत-ज्ञान के विना कठिन है। साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं का स्रोत भी संस्कृत ही है। जैसे—वङ्गला, मराठी, गुजराती आदि। उनका भी ठीक-ठीक ज्ञान संस्कृत के विना दुरूह है।

संस्कृत भाषा तथा साहित्य के ये कतिपय महत्त्वाधायक गुण हैं। दुःख है कि ऐसी गुणशालिनी भाषा का पठन-पाठन आज मन्द पड़ता जा रहा है। शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण विषय पर जाना चाहिये तथा इसके शिक्षण की सरलतम विधि बनायी जानी चाहिए। अन्यथा देश का भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। हमारी सांस्कृतिक मान्यतायें मिट्टी में मिल जायेंगी। हमारा शास्त्र पुस्तकों में ही सीमित रह जायेगा। हमारा नैतिक तथा समाजिक स्तर निम्न हो जायेगा। हमारा प्राचीन गौरव जाता रहेगा। हम कहीं के न होंगे। अभी समय है, हमें इस पर सोचना चाहिए तथा संस्कृत भाषा के महत्त्व से परिचित होकर इसका घर-घर में प्रचार-प्रसार करना चाहिए। संस्कृत ही हमारी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक उन्नति का एकमात्र साधन है।

卐

संस्कृत का प्रचार

हमारे देश की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है। उसमें ज्ञान-विज्ञान की अनन्त रत्न-राशियाँ विखरी पड़ी है। उनके सम्यक् ज्ञान के विना हमारी आत्मिक

एवं सांस्कृतिक उन्नति कदापि संभव नहीं है। दासत्व काल में संस्कृत को संकीर्ण घेरे में रखकर हमारा वहुत वड़ा अहित किया गया। हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूल-से गये। हमारा घोर नैतिक पतन हुआ। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे राष्ट्रनायकों ने संस्कृत की उन्नति की ओर ध्यान दिया। अनेक योजनायें वनीं। 'संस्कृत आयोग' 'संस्कृत विश्वविद्यालय' तथा 'संस्कृत परिषद्' आदि सरकारी संस्थाओं का निर्माण हुआ। संस्कृत के विद्वानों का उचित सम्मान हुआ। उनका वेतन-स्तर वढ़ाया गया। संस्कृत-परीक्षाओं की मान्यता वढ़ी। देश के संविधान में संस्कृत को भी उचित स्थान दिया गया। अर्थात् पहले की अपेक्षा अव संस्कृत उपेक्षित और कुण्ठित नहीं रही। उसको राजकीय प्रश्रय मिला। वह अपना उन्नयन करने में प्रवृत्त हुई।

यह सव होते हुए भी आज संस्कृत के प्रति लोगों की उदासीनता चिन्तनीय है। जो भाषा किसी समय जनभाषा थी और जिसका देश में पूर्ण प्रचार था, वह आज स्वतन्त्र भारत में भी जनता से उपेक्षित होकर कोने में पड़ी रहे, क्या यह लज्जा की वात नहीं है? जिसका अध्ययन गौरव के साथ होता रहा, उसको पढ़ने में आज लोग संकोच का अनुभव करें, क्या यह हमारा दुर्भाग्य नहीं है? विदेशी भाषा और वेशभूषा में पले हुए हमारे भाई ही आज संस्कृत के छात्रों एवं पण्डितों को देख कर नाक-भौं सिकोड़ें, क्या यह घोर चिन्ता का विषय नहीं है? आज ये सव प्रश्न विचारणीय हैं और उनका सम्यक् समाधान ढूँढ़ना होगा। तभी संस्कृत का वास्तविक उत्थान हो सकेगा।

इस दिशा में वहुत कुछ कार्य सरकार द्वारा संस्थापित कतिपय संस्कृत-संस्थायें कर रही हैं। पर केवल सरकार और संस्थाओं का ही यह कर्तव्य नहीं हैं। संस्कृत के पण्डितों का भी इस कार्य में पूर्ण सहयोग अपेक्षित है। संस्कृत को व्यवहारोपयोगी वनाने के लिए, उसमें निहित ज्ञानराशि को सर्वसुलभ करने के लिए तथा संस्कृताध्ययन को सर्वाङ्गीण वनाने के लिए संस्कृत के पण्डितों को वद्धपरिकर होने की आवश्यकता है। इसके लिए उन्हें थोड़ा त्याग और परिश्रम करना होगा और स्वार्थ से ऊपर उठकर उदार वातावरण का निर्माण करना होगा। संस्कृत शिक्षा की सरलतम विधियाँ वनानी पड़ेंगी। कठिन ग्रन्थों का

सरल अनुवाद प्रस्तुत करना पड़ेगा। टीकायें लिखनी होंगी। भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि नवीन विषयों में पुस्तकें लिखनी होंगी। अन्वेषण कार्य में दत्तचित्त होना पड़ेगा। घर-घर घूमना पड़ेगा और लोगों में संस्कृत की महत्ता का भाव भरना होगा। आवश्यकता पड़ने पर व्यापक आन्दोलन करना पड़ेगा। अपने लड़कों को संस्कृत पढ़ाना होगा। स्वयं संकीर्णता का त्याग कर दूसरों के सामने आदर्श उपस्थित करना होगा। नवीन सामाजिक मान्यताओं को अपने में आत्मसात् करना होगा। अंग्रेजी, हिन्दी आदि अन्य भाषाओं के साहित्य का परिज्ञान करना होगा और उनमें निहित सामग्री से संस्कृत को समृद्ध एवं सर्वाङ्गपूर्ण बनाना होगा। इनके अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रगति में भी पूर्णतः हाथ बँटाना होगा। आज विज्ञान के युग में हम उससे विमुख होकर कदापि उन्नति नहीं कर सकते। हाँ, यह जरूर है कि यह सब होते हुए भी अपनेपन को भूलना न होगा और आध्यात्मिकता को भी शक्ति देकर जन-जन में भरना होगा। तभी हमारा वास्तविक उत्थान हो सकेगा। तात्पर्य यह है कि हमें विज्ञान और अध्यात्म, दोनों का समन्वय कर देश की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पूर्ण जागरूक होना होगा।

संस्कृत के विद्वानों के साथ-साथ अन्य विषय के विद्वानों को भी संस्कृत-प्रचार-कार्य में दत्तचित्त होने की आवश्यकता है। संस्कृत किसी वर्ग की भाषा नहीं है। उसमें सबके लिये उपयोगी सामग्री भरी पड़ी है। उसको जानने से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का विकास ध्रुव है। अतः वकील, डाक्टर, अध्यापक, हाई-स्कूल तथा इण्टर कालेजों के प्रधानाचार्य, विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक, सरकारी आफिसर, रेलवे अधिकारी आदि समग्र शिक्षित समुदाय का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे स्वयं संस्कृत सीखें तथा अपने बालकों को संस्कृत सिखाने की व्यवस्था करें। जब तक देश के शिक्षित वर्ग में संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न न होगी, तबतक उसका विकास कठिन है। ये लोग चाहें, तो प्रत्येक नगर और कस्बे में एक-एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना कर सकते हैं। रात्रि में प्रौढ़ों को संस्कृत सिखाने की व्यवस्था कर सकते हैं। समय-समय पर संस्कृत के विद्वानों के भाषण करा सकते हैं। संस्कृत की पुस्तकों एवं पत्र-

पत्रिकाओं का एक पुस्तकालय स्थापित कर सकते हैं। स्वयं संस्कृत सीख कर अपना ज्ञानवर्द्धन कर सकते हैं। अपने बालक तथा बालिकाओं को संस्कृत पढ़ने की ओर उन्मुख कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृत-प्रचार में शिक्षित नागरिकों का सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है।

आज देश में नेताओं की कमी नहीं है। नेता ही देश का वास्तविक निर्माण करता है। देश के निर्माण का व्यावहारिक पक्ष यदि कृषि, व्यापार तथा उद्योग-धन्धे हैं तो सैद्धान्तिक पक्ष शिक्षा तथा संस्कृति है। गाँव-गाँव, नगर-नगर में आज शिक्षा का प्रचार हो रहा है, किन्तु क्या संस्कृत के बिना भारतीय शिक्षा पूरी मानी जा सकती है ! भारतीय शिक्षा में संस्कृत का वही स्थान हैं जो फूल में सुगन्धि का। हमारे नेतागण समय-समय पर अपने अमूल्य भाषणों तथा सुझावों से हमारा पक्ष प्रशस्त कर सकते हैं। उच्च नेताओं का इस सम्बन्ध में अधिक उत्तरदायित्व है।

हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट विद्यालयों के प्रधानाचार्य को संस्कृत प्रचार में सक्रिय सहयोग करना चाहिए। उनके पास बहुत बड़ी सेना है। भारत का सम्पूर्ण भविष्य उनके हाथों में है। उनका पुनीत कर्तव्य है कि वे अपने विद्यार्थियों को अधिक से अधिक संख्या में संस्कृत पढ़ने की ओर प्रवृत्त करें। हाईस्कूल तथा इण्टर में संस्कृत का पाठ्यक्रम बड़ा नगण्य होता है। अतः संस्कृत विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भी कुछ छात्रों को वे तैयार कर संस्कृत की परीक्षा में बैठने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। इससे वे चाहें तो अपने यहाँ एक संस्कृत की पाठशाला भी चला सकते हैं। इससे संस्कृत को बड़ा बल मिल सकता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय ग्रामीण नागरिकों शहर के व्यवसायियों तथा धनी-मानी सज्जनों को भी इस कार्य को प्रोत्साहित करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए। गाँव-गाँव में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना होनी चाहिए। उनकी आर्थिक समस्या का समाधान, पहले की तरह, आज भी धनी-मानी नागरिकों को अपने हाथ में लेना चाहिए। वास्तविक रूप में संस्कृत-प्रचार के क्षेत्र तो हमारे गाँव ही हैं। एक समय था जब गाँवों में संस्कृत का पूर्णतः बोलबाला

था। पंडितों का वाहुल्य था। समाज में उनकी अच्छी स्थिति थी। एक सांस्कृतिक वातावरण था। आज भी उस वातावरण को पुनः लाना होगा। घर-घर में संस्कृत का प्रचार करना होगा। गाँव वालों को इस कार्य में सक्रिय योग देने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त व्यक्तियों का संस्कृत-प्रचार-कार्य में आह्वान करने के पूर्व हमें अपनी स्थिति भी सुदृढ़ करनी होगी। हमारी शिक्षण संस्थायें आज दीन-हीन अवस्था में पड़ी हुई हैं। छात्रों का अभाव अधिक खटकने की वस्तु है। जब सरकार संस्कृत परीक्षाओं की मान्यता उद्घोषित कर चुकी है। जब विविध नौकरी के द्वार संस्कृत परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियों के लिए भी उन्मुक्त हैं औरहमारी शिक्षा निःशुल्क है तो कोई कारण नहीं है कि हमारी पाठशालाओं में छात्रों की कमी हो। किन्तु कमी है। संस्कृत पाठशालाओं के प्रबन्धकों, अध्यापकों तथा निरीक्षकों को इस पर विचार करना होगा। जब तक हम अपनी स्थिति जनता के सन्मुख स्पष्ट नहीं करेंगे, जब तक हम पाठशालाओं में संस्कृत के साथ-साथ अन्य विषयों के योग्य अध्यापकों की नियुक्ति नहीं करेंगे, जब तक विविध साज-सज्जाओं, कुर्सी, मेज आदि उपकरणों से विद्यालयों को सुसज्जित नही करेंगे, जब तक पढ़ाई-लिखाई के ढंग में परिवर्तन नहीं करेंगे और जब तक पढ़ाने के साथ लिखाने पर समुचित ध्यान न देंगे, तब तक अन्य लोगों से हमारा संस्कृत-प्रचार की वात करना अनुचित है। अतः हमें अपना संस्कार पहले स्वयं करना चाहिए। इससे सभी प्रभावित होकर अनायास संस्कृत-शिक्षण की ओर अपने वालकों को भेजेंगे। पाठशालायें समृद्ध होंगी। संस्कृत का लोक-जीवन से सम्पर्क होगा और हमारी हीनता तथा दीनता दूर होगी।

आज महिलाओं में संस्कृत शिक्षा का अभाव राष्ट्र के लिए अत्यधिक खेद का विषय है। वे हमारी मातायें हैं। बालकों को वनाने-विगाड़ने का अधिक श्रेय उन्हीं को है। उनकी जैसी शिक्षा होगी, बालकों की भी शिक्षा उसी के अनुरूप होगी। संस्कृत-शिक्षा की ओर उन्हें प्रवृत्त करने की आज अधिक आवश्यकता है। इस दिशा में सरकार की ओर से और संस्कृत-समाज की ओर से

कोई ठोस रचनात्मक योजना अभी तक नहीं वनायी गयी। परिणामतः आज पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली में शिक्षित तथा हमारी माताएँ, वहनें विपरीत मार्ग की अनुगामिनी वनकर भारतीय आदर्शों को भूलती जा रही हैं। इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना चाहिये। उनके लिए अलग विद्यालय खुलने चाहिये। उनका पाठ्यक्रम वालकों से कुछ भिन्न होना चाहिये। रामायण, महाभारत, पुराण आदि का सम्यक् ज्ञान उनके लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। साथ ही संगीत, कला और काव्यों की भी शिक्षा उनके लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संस्कृत का विस्तृत ज्ञान भी वे यदि करना चाहें, तो उन्हें पढ़ाये जाने का समुचित प्रवन्ध होना चाहिए। संस्कृत शिक्षा का वास्तविक प्रचार-प्रसार तभी पूरा होगा, जव हमारी मातायें तथा वहनें इस कार्य में हाथ वटायेंगी।

लोगों को एक भ्रम है, कि संस्कृत केवल ब्राह्मणों के पढ़ने की धर्म-भाषा है। इस भ्रम का निवारण करना होगा और यह वताना होगा कि यह भाषा राजा भोज के समय में स्त्रियाँ, लकड़ी वेचने वाले तथा जुलाहे आदि सभी जानते थे। यह जन-भाषा थी। इसका साहित्य सर्वसाधारण की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। यह सवके लिये समान लाभदायी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी वर्णों को इसका पठन-पाठन और अनुशीलन करना चाहिए।

उक्त पद्धति से जव हम, हमारी सरकार, नागरिक, नर-नारी, सभी संस्कृत के प्रचार के पवित्र यज्ञ में जुटेंगे, तभी संस्कृत का सर्वाङ्गीण विकास सम्भव है। आज इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। देश का सर्वाङ्गीण विकास हो रहा है। इसी लहर में, इस पवित्र एवं सांस्कृतिक कार्य में भी लोगों को परस्पर सहयोगपूर्वक जुट जाना चाहिए। परस्पर सहयोग से कठिन कार्य भी आसान हो जाता है।

"परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।"

卐

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

भारत में स्वातन्त्र्य-सूर्य के उदय के साथ-साथ संस्कृत विद्या का भी भाग्योदय हुआ। हो भी क्यों न। हमारी संस्कृति की आधार-शिला संस्कृत विद्या ही है। हमारे वेद, पुराण, दर्शन आदि प्राचीन वाङ्मय से ही भारत को सदा आलोक मिलता रहा है। फिर जब हम सदियों की दासता से उन्मुक्त हुए और देश का सर्वाङ्गीण विकास चाहते हैं, तो सांस्कृतिक निधि की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक ही है। फलतः हमारी प्रबुद्ध सरकार ने संस्कृत के सम्यक् उन्नयन हेतु एक संस्कृत आयोग का संघटन किया। इस आयोग में संस्कृत के मान्य मनीषी रखे गये। उन्होंने संस्कृत की सर्वाङ्गीण उन्नति को ध्यान में रखकर एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रकाशित किया। अन्य आवश्यक बातों के साथ उसमें प्रमुख बात यह भी कि देश में संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए; जिनके माध्यम से पठन-पाठन के अतिरिक्त संस्कृत विद्या का विधिवत् अनुसन्धान हो सके। इस आवश्यक तत्त्व को सभी ने स्वीकार किया। किन्तु सर्वप्रथम कार्यरूप में परिणत करने का श्रेय उत्तर प्रदेश-सरकार को मिला। तत्कालीन मुख्यमन्त्री डा० सपूर्णानन्द के सत्प्रयास से ११ सितम्बर सन् १९५६ को सांस्कृतिक नगरी वाराणसी में निर्विरोध एक संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में विधेयक पारित हुआ। तदनुसार दिनांक २२।३।५८ को शिक्षामन्त्री पण्डित कमलापति त्रिपाठी की अध्यक्षता में वेदघोषपुरस्सर 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' का उद्घाटन कार्य संपन्न हो गया। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य संस्कृत भाषा और साहित्य के सम्यक् प्रचारण और प्रसारण के साथ-साथ उसमें बिखरी हुई अनन्त रत्नराशियों का अन्वेषण तथा प्रकाशन है।

वाराणसी में 'राजकीय संस्कृत महाविद्यालय' सैकड़ों वर्षों से संस्कृत विद्या का पठन-पाठन तथा अनुसन्धान करता चला आ रहा था। संस्कृत विश्वविद्यालय उसी संस्था का परिवर्धित एवं परिष्कृत रूप है। उक्त संस्था का इतिहास गौरवपूर्ण है। देश के दासत्व-काल में इस संस्था ने संस्कृत की जो महती सेवा की,

वह उल्लेखनीय है। डा० थीवो, ग्रिफिथ, वैलेन्टाइन, वेन्सि प्रभृति विदेशी विद्वान् तथा डा० गङ्गानाथ झा, म० म० पण्डित गोपीनाथ कविराज प्रभृति भारतीय विद्वान् इस संस्था के प्रिन्सिपल रह चुके हैं और म० म० वालशास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, गङ्गाधर शास्त्री, दामोदर शास्त्री, सुधाकर शास्त्री प्रभृति विद्वान् इसमें अध्यापन कर चुके हैं। 'सरस्वती भवन पुस्तकालय' इस संस्था का प्रमुख अंग रहा हैं, जो आज विश्वविद्यालय का अनुसन्धान-पुस्तकालय वना हुआ है।

संस्कृत विश्वविद्यालयके कुलाधिपति (चांसलर) विधानतः प्रदेश के राज्यपाल होते हैं। इसके प्रतिकुलाधिपति (प्रो-चांसलर) काशीनरेश श्रीविभूतिनारायण सिंह हैं। कुलपति का चुनाव होता हैं। कुलपति ही विश्वविद्यालय का प्राण होता है। इस विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति म० म० डा० गङ्गानाथ झा के सुपुत्र पण्डित आदित्यनाथ झा, आई० सी० एस० वनाये गए थे। उन्होंने संस्था की सर्वविध उन्नति की महती योजना वनायी और सरकार ने उसकी स्वीकृति दी। फलतः वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य, न्याय-वैशेपिक, वेदान्त, मीमांसा, सांख्य-योग, आगम, वौद्धदर्शन, जैन दर्शन, पालि, प्राकृत आदि सभी प्राचीन शास्त्रों के साथ-साथ हिन्दी, अँग्रेजी, इतिहास-भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि आधुनिक शास्त्रों के विभागों की स्थापना हुई और सब में योग्य अध्यापकों की नियुक्ति कर पठन-पाठन को विश्वविद्यालयीय रूप दिया गया। सरस्वती भवन पुस्तकालय का विस्तार किया गया। एक स्वतन्त्र 'अनुसन्धान संस्थान' की स्थापना हुई। अनुसन्धित्सु छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ निर्धारित की गयीं। 'विद्यावारिधि' तथा विद्यावाचस्पति' ये दो उपाधियाँ उनके लिए निश्चित की गयी। अनुसन्धान तथा प्रकाशन का कार्य आरम्भ हुआ। संस्कृत के स्नातकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण-विभाग खोला गया। विदेशी छात्रों को संस्कृत की शिक्षा देने के लिए तथा भारतीय छात्रों को फ्रेंच, जर्मन, तिब्बती आदि विदेशी भाषाओं की शिक्षा देने के लिए 'प्रमाणपत्रीय विभाग' खोले गये। वैदिक विधि से एक यज्ञशाला तथा नाटयशास्त्रीय विधि से एक रङ्गशाला का निर्माण हुआ। साथ ही प्राचीन इतिहास के ज्ञान की आधारभूत प्राचीन मूर्तियों

एवं कलाकृतियों का एक संग्रहालय भी बनाया गया। पाठ्यक्रम में व्यापकता लायी गई। छात्रवृत्तियों में सुधार किया गया। छात्रों के लिए एक वृहद् छात्रावास-निर्माण का समारम्भ हो गया। इस प्रसङ्ग में सबसे अधिक उल्लेखनीय यह है कि अध्यापकों एवं अन्य कर्मचारियों का वेतनमान अन्य विश्वविद्यालयों के अनुरूप किया गया। सम्मानित प्राध्यापकों की भी नियुक्ति की गई। इस तरह यह विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयों के समकक्ष बनकर संस्कृत विद्या की उन्नति में अग्रसर हुआ।

उक्त समारम्भ को परिपुष्ट एवं समुन्नत बनाते हुए आज (१९८२) यह विश्वविद्यालय चौबीसवें वर्ष में चल रहा है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा प्रदेशीय सरकार का पूर्ण सहयोग प्राप्त है। विश्वविद्यालय दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करता चल रहा है। कालान्तर में कुछ नये विभाग खोले गये। जैसे 'योग एवं तन्त्र विभाग' 'प्राचीन राजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र विभाग' तथा 'आयुर्वेद विभाग'। आयुर्वेद विभाग में न केवल आयुर्वेद का पठन-पाठन होता है, अपितु उसके प्रयोग के लिए एक विशुद्ध आयुर्वेदिक अस्पताल भी उसके अन्तर्गत चल रहा है। 'भाषा विज्ञान' के पठन-पाठन एवं अनुसन्धान की दिशा में भी यहाँ उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। 'ग्रन्थालय-विज्ञान' का पठन-पाठन भी यहाँ पर कुछ वर्षों से चलाया जा रहा है।

विश्वविद्यालय के पास सम्प्रति चार छात्रावास हैं। चारों में लगभग चार सौ छात्र रहते हैं। छात्रों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता। प्रत्युत उन्हें छात्रवृत्ति भी दी जाती हैं। छात्रों के खेल-कूद की भी समुचित व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से की गई है। साथ ही एन० सी० सी० एवं एन० एस० एस० की शिक्षा का भी यहाँ समुचित प्रबन्ध है।

सरस्वती भवन पुस्तकालय का पूर्ण विस्तार किया गया है। पुस्तकालय के पास पहले एक ही भवन था, अब दो भवन हो गये हैं। एक में हस्तलिखित ग्रन्थों का विशाल संग्रह है और दूसरे में मुद्रित ग्रन्थों का महान् संग्रह है। ये दोनों संग्रह अनुसन्धान करने वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी है।

विश्वविद्यालय का अनुसन्धान-विभाग अपनी पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार

चल रहा है। इसके अन्तर्गत एक प्रकाशन-विभाग भी है। इस विभाग से अबतक सैकड़ों दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। 'सारस्वती सुषमा' नामक एक त्रैमासिक अनुसन्धानात्मक पत्रिका भी इस विभागसे प्रकाशित होती है। इसका एक अपना समृद्ध मुद्रणालय भी है। यहाँ से एक दृक्सिद्ध पंचाङ्ग का प्रकाशन प्रतिवर्ष होता है, जिसका प्रवर्तन म० म० वापूदेव शास्त्री ने किया था।

विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को अन्य विश्वविद्यालयों ने भी मान्यता प्रदान की है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों ने भी प्रतियोगिता परीक्षाओं में बैठने के लिए यहाँ के स्नातको को मान्य घोषित कर दिया है। साथ ही विश्वविद्यालय ने भी अपनी परीक्षाओं की मान्यता में उदारता बरती है। फलतः संस्कृत सहित जूनियर हाई स्कूल उत्तीर्ण व्यक्ति को पूर्व मध्यमा में, संस्कृत सहित हाई स्कूल उत्तीर्ण व्यक्ति को उत्तर मध्यमा में, संस्कृतसहित इण्टरमीडियट उत्तीर्ण व्यक्ति को शास्त्री में तथा संस्कृत सहित बी० ए० उत्तीर्ण व्यक्ति को आचार्य में प्रविष्ट होने का अधिकार दिया गया है।

विश्वविद्यालय से सम्वद्ध शताधिक संस्कृत पाठशालाएँ देश के कोने-कोने में संस्कृत की शिक्षा दे रही हैं। इनमें अध्यापन करने वाले अध्यापकों को वेतनमान पहले बड़ा ही अल्प तथा उपेक्षित रहा है। विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रयत्न से सरकार ने उन अध्यापकों का वेतन स्तर भी बढ़ा दिया हैं। इण्टरमीडियट कालेजों की तरह उन्हें पेंसन आदि की सुविधाएँ मिल रही हैं।

इस तरह संस्कृत तथा संस्कृतज्ञों को हर तरह से सुसम्पन्न बनाता हुआ संस्कृत विश्वविद्यालय भारतीय जीवन-धारा को प्राचीन आदर्शों की ओर उन्मुख करने में पूर्णतः प्रवृत्त है। इसका आदर्श वाक्य है—'श्रुतं मे गोपाय।' इस आदर्श वाक्य की दृढ़ नींव पर प्रतिष्ठित होकर यह विश्वविद्यालय शास्त्रों के अन्वेषण तथा संरक्षण, अध्ययन तथा अध्यापन और प्रचार तथा प्रसार करने में संलग्न है। इसी की देखा-देखी विहार, उड़ीसा आदि अन्य प्रदेशो में संस्कृत विश्वविद्यालय खुले हैं। वह दिन दूर नहीं, जब देश के प्रत्येक प्रदेश में संस्कृत विश्वविद्यालय खुलेंगे और संस्कृत विद्या का उचित आदर होगा।

卐

हमारे महत्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रश्नोत्तरियाँ